प्रकाशक—
देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाजार
दिल्ली।

२॥)

मुद्रक—
रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस,
२३, दरियागंज, दिल्ली।

सेवा में ____________________

____

____

विनीत ____________________

____

हे देवियो ! माताओ ! बहनो ! भूलीं क्यों निज-स्वरूप को ?
आदर्श-मय जीवन-चरित्र, मा सीता के अनुरूप हो ॥
इस उद्देश्य की पूर्ति के कारण, "चतुर गृहिणी" आई है।
शिक्षा और उपदेश का भण्डार अपने साथ में यह लाई है ॥

—प्रेषिका

गृहस्थाश्रम

संसार में सबसे बड़ा, गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है ।
किन्तु देखा हाय, गृहिणी, ही पड़ी निश्चेष्ट है ॥
काम-धन्धे करती हैं, पर रीति कुछ मालूम नहीं ।
ज्ञात हो कैसे भला, जब पुरुष भी हैं कम नहीं ॥

पढ़ना-लिखना, शिक्षा देना, तो रहा कुछ दूर ही ।
कह नहीं सकते कि क्यों, बाधित रहें वे जरूर ही ॥
हम नहीं कहते कि नारी, पुरुष बन कर ही रहें ।
किन्तु रहे भी एक सच्ची, गृह-लक्ष्मी बनकर रहे ॥
सीना-पिरोना, भोजनादि यह तो जिनका काम है ।

इस काम में ही नारी-जाति, क्यों भला बदनाम है ॥
कोई कहता रोटियाँ तक भी तो पोनी आई ना ।
और कहता कोई कि धोती भी धोनी आई ना ॥
शाक-सब्जी और दालों की कथा कैसे कहें ।

नमक कम है, मिर्च ज्यादा, हाय दुःख कैसे सहें ॥
क्यों हुआ कैसे हुआ, क्या कोई यह भी जानता ?
गृह-धर्म की शिक्षा बिना, है यह भरी अज्ञानता ॥

हे देवियो ! माताओ ! बहनो ! भूली क्यों निज रूप को ।
आदर्शमय जीवन-चरित्र, माँ सीता के अनुरूप हो ॥
इस उद्देश्य की पूर्ति के कारण, 'चतुर गृहणी' आई है ।
शिक्षा और उपदेश का भण्डार अपने साथ में यह लाई है ॥

— लेखिका

भूमिका

नारी इस विश्व की शोभा है। यदि यह न होती, तो सृष्टि-कर्ता का विश्वरूपी यह सुन्दर-मनोरम उद्यान इस प्रकार हरा-भरा और लहलहाता हुआ कभी न दीखता। इसके अभाव में इस विश्व की शोभा—इसका समस्त सौंदर्य नष्ट-भ्रष्ट होकर न जाने कब तक कभी का शून्य में विलीन हो गया होता। नारी ही इस जगत का प्राण है, नारी ही शृङ्गार—और नारी ही है वह आकर्षण—जिसकी भित्ती पर यह विशाल, इतना बड़ा और विस्तृत जगत् टिका हुआ है। हाँ, टिका हुआ है इतनी दृढ़ता और ऐसे सुन्दर ढंग से, कि एक तिल भी इधर से उधर नहीं हो सकता। यह नारी ही है जिसने इस विशाल और दूर-दूर तक फैले हुए जगत् के बिखरे हुए प्राणियों को प्रेम-सूत्र में जकड़ कर एक कर दिया है। नारी न होती, तो कौन कह सकता है कि इस संसार की क्या दशा होती? सत्य तो यह है, कि नारी के अभाव में न तो मानव जीवित रह सकता है और न इस संसार की ही अभिवृद्धि हो सकती है। विश्व नियन्ता ने इस विश्व में प्राणी मात्र के बीच, नर-नारी का भेद उत्पन्न कर इस सृष्टि को निरन्तर अक्षुण्ण बनाये रखने का जो साधन स्थिर किया है—सचमुच वही इस सृष्टि का मूल है। नर-नारी—अलग रहते हुए दोनों ही अपूर्ण हैं—किन्तु जब दोनों मिलते, और मिलकर दोनों एक हो जाते हैं; तब यह अभाव दूर होकर उनकी अपूर्णता भी नष्ट हो जाती है। नारी एक शक्ति है जो पुरुष में मिलकर उसे संसार का कोई भी बड़े से बड़ा कार्य करने का प्रोत्साहन देती है। नारी जननी है, जो पुरुष के सहयोग से मानव का निर्माण करती है। नारी अर्धांगी है, जो गृहस्थ-जीवन में

प्रवेश करते ही दीन दुखियों और दरिद्रों का सहारा बन, यथा साध्य उनकी सहायता करती है। नारी अमृत है, जो पुरुष के मुर्झाये और शोकाकुल हृदय को संजीवनी प्रदान कर, उसे संसार के विस्तृत कार्य-क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। वास्तव में नारी ही इस जगत् का प्राण है।

नारी—मैं भारतीय नारी की बात कहता हूँ, विवाहोपरान्त जिस उत्तरदायित्वपूर्ण वातावरण में प्रवेश करती है – उसे देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि उसकी जिम्मेदारियाँ पुरुष—अर्थात् अपने पति से कहीं अधिक बड़ी-चड़ी और महत्वपूर्ण हैं। पूरे कुटुम्ब–समस्त गृहस्थी की देख रेख और पालन-पोषण का भार अधिकतर उसी के सिर पर होता है। कहना होगा, यों तो भारतीय नारी अपने दायित्व को स्वयं ही भलीभाँति जानती और पूरा करने का भरसक प्रयत्न भी करती है, किन्तु बिना यथोचित शिक्षा के वह सुगमतापूर्वक अपने पथ पर आगे नहीं बढ़ सकती। इसीलिये गृहस्थ-शिक्षा का अध्ययन करना परम आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये लिखी गई है। पुस्तक आद्योपान्त पढ़ने पर यह मानना पड़ता है कि लेखिका ने इसको लिखने में न केवल भारी खोज, अनुभवों और परिश्रम से ही काम लिया, बल्कि भारतीय नारी-समाज के प्रति एक उपकार भी किया है। पुस्तक में कोई विषय ऐसा नहीं, जो गार्हस्थ्य-जीवन के लिये उपयोगी न हो।

आशा है शिक्षिता बहनें इसको पढ़कर अवश्य ही लाभ उठायेंगी।

विनीत,

—राजेश गुप्त।

तृतीय-खण्ड

१

विवाह क्या ?

" सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु, सम्राज्ञ्युत देवृषु ।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि, सम्राज्ञ्युत श्वश्रवाः ॥"

अर्थात्—श्वसुर, सास हो, ननँद या देवर ।
वधु ! तू सबकी, रह रानी बनकर ॥

विवाह क्या है ? साधारणतया सब जानते हैं, कि स्त्री-पुरुष दो प्राणियों को एक विशेष बन्धन में जकड़ देने को विवाह कहते हैं। हिन्दू शास्त्र और हिन्दू-धर्म के अनुसार विवाह एक ऐसी प्रथा है—ऐसा पवित्र और सुदृढ़-बन्धन है कि जिसमें एक बार जकड़े जाने के बाद, स्त्री-पुरुष दोनों में से कोई भी आयु-पर्यन्त एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। सृष्टि कर्ता ने इस विश्व में नर-नारी का भेद उत्पन्न कर निरन्तर सृष्टि को अक्षुण्ण रखने का जो साधन स्थिर किया है, वही सृष्टि का मूल है। नर-नारी का जोड़ा, अलग रहते हुए दोनों ही अपूर्ण हैं। परन्तु जब दोनों मिल कर एक हो जाते हैं, तो वे पूर्ण और शक्तिवान हो जाते हैं। स्त्री-पुरुष के इस एकीकरण के पश्चात् ही

गार्हस्थ्य-जीवन का आरम्भ होता है, और तभी वे दोनों मिलकर विश्व-नियन्ता की सृष्टि-रचना के कार्यों में सहायक होते हैं। विवाह मानव जीवन की एक अपूर्व और सबसे अधिक महत्व-पूर्ण घटना है। आर्य-संस्कृति के अनुसार विवाह दो आत्माओं, दो हृदयों और दो शरीरों का एक ऐसा संयोग है, जो जीवन-पर्यन्त चिरस्थायी रहता है। विवाह स्त्री-पुरुष के शरीर, मन और आत्मा में अभिन्नता की प्रतिष्ठा कर जीवन को सुखी बनाता है।

यह तो हुई विवाह के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त-सी व्याख्या—अब जरा इस पर भी विचार करना चाहिये, कि यह शुभ अवसर आता कब है मानव-जीवन में! मनु महाराज ने कहा है—"जब तक कन्या पति की मर्यादा और सेवा की महिमा न जान ले, स्त्री धर्म-पालन करने का ज्ञान न प्राप्त हो जाये, तब तक कन्या को विवाह के योग्य नहीं समझना चाहिये।" कन्याओं में यह अवस्था आजकल प्रायः बारह वर्ष के ऊपर आरम्भ हो जाती है—किन्तु विवाह, चौदह से अट्ठारह वर्ष की आयु तक करा देना अधिक उपयुक्त है। इस अवस्था के बाद या पहले विवाह कराने का मतलब होगा—कन्या के साथ अन्याय, समाज के प्रति कृतघ्नता और निज-कुल, जातीय-धर्म तथा मर्यादा का उल्लङ्घन करना। अतः यह भूलना नहीं चाहिए कि कन्या की यह अवस्था विवाहोपयोगी होने के साथ-साथ गार्हस्थ्य-धर्म-पालन के लिये भी अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। इसी अवस्था में कन्या, केवल कन्या ही नहीं—तरुणी हो जाती है, प्रत्येक बात समझने लगती है।

कहा जाता है, कि पहले हमारे पूर्व-पुरुष कन्याओं का विवाह अल्पायु में ही कर देना अधिक उचित समझते थे। जैसा कि निम्न लिखित श्लोकों से मालूम होता है—

१—अष्टवर्षा भवेद्गौरी, नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या, तदूर्ध्वं च रजस्वला॥

अर्थात्—आठ वर्ष की लड़की गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी, दश वर्ष की कन्या और उसके पश्चात् रजस्वला होती है। अर्थात् रजस्वला होने के पश्चात् ही कन्या का विवाह करा देना जरूरी है।

२—माता चैव पिता चैव, ज्येष्ठ भ्राता तथैव च।
त्रयश्च नरक यान्ति, दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम॥

अर्थात्—माता, पिता और ज्येष्ठ भ्राता ये तीनों यदि रजस्वला कन्या को देखें, तो नर्क पाते हैं।

३—सप्राप्तैकादशे वर्षे, कन्या या न विवाहिता।
मासे-मासे पिता माता, तस्याः पिबति शोणितम्॥

अर्थात्—यदि ग्यारहवें वर्ष में कन्या का विवाह न करें तो प्रति मास कन्या के रजस्वला होने का रुधिर माता-पिता मानो पान करते हैं। ओह, कैसी कठोर बात लिखी गई है इस श्लोक में मां-बाप के लिये!

उपरोक्त श्लोकों के अनुसार आठ से दस वर्ष तक की अवस्था में कन्या का विवाह न कर देना महा पाप समझा जाता था। किन्तु इन श्लोकों का आविर्भाव उस समय हुआ था, जबकि देश में सर्वत्र

'मुस्लिम-राज्य' का आतङ्क छाया हुआ था। मुस्लिम-कानून के अनुसार कुमारी-कन्या को बलात् पकड़ कर मुसलमान बना लेना और और बलात् उसका सतीत्व भङ्ग कर देना कोई अपराध नहीं माना जाता था। परिणाम स्वरूप उद्दण्ड और बर्बर मुसलमान, हिन्दू-कन्याओं को जबरदस्ती पकड़ कर उनका धर्म बिगाड़ देते थे—उनसे विवाह कर लेते थे। इसी अत्याचार से बचने के लिये, हिन्दुओं ने कन्याओं का विवाह छोटी उम्र में ही कर देने की प्रथा आरम्भ की थी। परन्तु 'वीर्य-रक्षा' और 'स्वास्थ्य-रक्षा' का ध्यान रखते हुए 'द्विरागमन' या 'चाला' या 'गौना' प्रायः सात वर्ष पीछे हुआ करता था। यह हमारे सौभाग्य की बात है, कि अब वह समय 'इस्लाम-राज्य' के पतन के साथ-साथ ही समाप्त हो चुका है—अतः अब देश को वैसे 'बाल-विवाहों' की भी आवश्यकता नहीं रह गई है।

आजकल प्रायः १२-१४ वर्ष की उम्र में कन्यायें रजस्वला हो जाती हैं। इसका मुख्य कारण विवाहादि शुभ अवसरों पर गन्दे-गीत, गालियाँ अथवा 'बेहूदा मजाक' आदि कामोद्दीपक कार्य होने से कन्याओं की शुद्ध और कोमल भावनायें अशुद्ध हो जाती हैं। उनका मन मैला हो जाने के कारण, विषयेन्द्रियों पर प्रभाव पड़ता है और वह समय के पहले ही रजस्वला हो जाती हैं। अलावा इसके, प्रायः यह देखा गया है कि गर्म-देशों में रहने वाली लड़कियें जल्दी ही ऋतु-मती हो जाती हैं। रजस्वला शीघ्र होने का कारण एक और यह भी है—जो कन्यायें धनिक-परिवारों में पालित-पोषित होने के कारण ऐश्वर्य युक्त जीवन-यापन करती हैं, अथवा ऐसे वातावरण में रहती हैं—वहाँ

भोग-विलास या विषय-वासनाओं की ही चर्चा हर समय हुआ करती है या पौष्टिक भोजन, अच्छा रहन-सहन, अच्छा स्वास्थ्य और गर्म चीज़ों का सेवन अधिक करने वाली कन्याओं को भी मासिक धर्म जल्दी होने लगता है। तात्पर्य यह है, कि कन्या जिस समय से रजस्वला होने लगती है, उसी समय से उसके विवाह का प्रबन्ध करना आरम्भ कर देना चाहिये। ऋतुमती कन्याओं का मुख देखना भी माता-पिता के लिये महा पाप है।

प्राचीन रूढ़ियों के अनुसार विवाह के पहले वर-वधु को हमारे देश में एक-दूसरे से मिलने की आज्ञा नहीं है। यही कारण है, कि विवाहो-परान्त—जब वर-वधु प्रथम-रात्रि में परस्पर मिलते हैं, तो वे एक-दूसरे से सर्वथा अपरिचित होते हैं और इसी लिये उन्हें परस्पर वार्तालाप करने, घनिष्ठता बढ़ाने और एक दूसरे के मनोभावों को समझने में कुछ अड़चन और समय लगता है। हमारे विचार से इस प्रथा में कुछ सुधार अवश्य होना चाहिये। वर-वधु, जिन्हें जीवन भर एक साथ रह कर सुख-दुःख, आपत्ति-विपत्ति तथा अन्य सभी प्रकार के उत्थान-पतन और सांसारिक आँधी-तूफ़ानों का मुकाबला करते हुए अपने गार्हस्थ्य-भार को वहन करना है—कम से कम इतना तो अवश्य होना चाहिये, कि विवाह-बंधन में जकड़े जाने के पहले, उन्हें परस्पर मिलने और मिलकर एक-दूसरे के स्वभाव, व्यवहार तथा उनकी मनः स्थिति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हो सके। पुराने समाज के आदमी हमारी इस युक्ति को भले ही कुछ संकुचित दृष्टि से देखें, पर है यह ठीक। यदि इस ओर ध्यान न भी दिया गया, तो आधुनिक युवक और युवतियें स्वयं ही

अपना मार्ग निश्चित करने को विवश हो जायेंगे। ऐसी दशा में स्थिति महा-भयंकर तथा अप्रिय और असन्तोषप्रद हो जाने का भय रहता है।

हम यह नहीं कहते—कहना भी नहीं चाहते, कि भारत में योरप और अमेरिका आदि पश्चिमीय देशों की तरह विवाह की प्रथा आरम्भ की जाये। वहाँ तो विवाह के पूर्व युवक-युवतियों को परस्पर मिलने और मिलकर प्रेमाचार करने की पूर्ण स्वाधीनता है—और वह स्वाधीनता भी ऐसी, कि जिसे हमारे देश वाले, किसी भी भाव से स्वीकार करने को उद्यत न होंगे। पाश्चात्य-देशों में, विवाहेच्छुक युवक-युवतियाँ स्वच्छन्दता-पूर्वक सिनेमा-गृहों, वाटिकाओं, उपवनों, होटलों, आमोद-गृहों, क्लबों अथवा बाजारों में बिना रोक-टोक के मिलते-जुलते हैं। इतना ही क्यों? वे तो परस्पर चुंबन, आलिङ्गन और संभोग तक भी करते हैं। अमेरिका में 'ट्रायल-मैरिज' अर्थात् 'प्रयोगात्मक-विवाह' की प्रथा भी प्रचलित है। इस प्रथा के अनुसार होने वाली पत्नि प्रायः एक वर्ष या इससे भी कुछ अधिक समय तक अपने भावी पति के पास रहती है— और इतने समय में वे दोनों पारस्परिक गुण दोषों की भली भांति परीक्षा कर लेते हैं। यदि उनके चरित्र, गुण और स्वभाव में समानता होती है, तो वे विवाह कर लेते हैं, अन्यथा इस अस्थायी सम्बंध का विच्छेद हो जाता है।

ऐसी दूषित प्रथा की हम अपने देश के लिये कल्पना भी नहीं कर सकते। हम विवाह के सम्बन्ध में युवक-युवतियों की स्वतन्त्रता के हामी अवश्य हैं, किन्तु पश्चात्य-देशों के समान निर्लज्जता, कलङ्क और व्यभिचार के नाटक का अभिनय करते हुए उन युवक-युवतियों को हम

कदापि नहीं देख सकते; जिनके कंधों पर गृहस्थी का, समाज का, जाति, धर्म और देश की रक्षा का भार पड़ने वाला है। वर-वधु, जिनकी होने वाली सन्तानों पर देश की समस्त आशायें अवलम्बित हैं—निश्चय ही आदर्श-चरित्र के होने चाहिये।

पौराणिक-कथाओं के पढ़ने और सुनने से यह स्पष्ट तौर पर मालूम होता है कि प्राचीन काल में यहाँ स्वयंवर रचने की भी प्रथा थी। इसके अनुसार किसी निश्चित-तिथि में आमन्त्रित-जन दूर-दूर से आकर कन्या के पिता के घर एकत्रित होते थे और कन्या अपने पिता की आज्ञा से वर-माल हाथ में लिये हुए मण्डप में आकर अपनी इच्छा से जिसे चाहती जयमाल गले में डालकर अपना पति निर्वाचित कर लेती। किन्तु यह प्रथा प्रायः उच्च वर्ग—जैसे राजे-महाराजों में ही प्रचलित थी। हम नहीं कह सकते कि ऐसी अच्छी प्रथा का प्रचार निम्न अथवा मध्यम वर्ग में क्यों नहीं हो पाया—शायद ऐसा करने में निम्न-वर्ग के लिये आर्थिक-समस्या अथवा शान्ति-भंग होने का प्रश्न बाधा पहुँचाता हो। अस्तु—कोई भी कारण क्यों न रहा हो; किन्तु यह हम अवश्य कहेंगे कि ब्याह-शादी के मामलों में माता-पिता का यह कर्त्तव्य अवश्य होना चाहिये कि जहाँ तक संभव हो सके वे अपनी सन्तानों को विवाह के पूर्व ही एक बार एक-दूसरे से मिलकर परस्पर एक-दूसरे को पह-चानने का अवसर दे सकें तो बहुत अच्छा हो। ऐसा करने से न केवल भविष्य में होने वाले गृह-कलह से ही उन्हें छुटकारा मिलेगा, बल्कि साथ ही साथ अपनी सन्तानों को वे सच्चे दाम्पत्य-सुख का उपभोग करते हुए भी देख सकेंगे।

२

पत्नि-कर्त्तव्य

हो शास्त्र-विधिसे बन्धनयुक्त, पति चलती श्वसुरालय को।
हो निष्ठुर नाता तोड़ दिया, और छोड़ चली पितृालयको॥
थी अब तक लाड़लि माता की, और पिता की ममता थी तुझ पर
सब छोड़ चली, क्यों रोती है, अब पूज पति-देवालय को॥

विवाहोपरान्त जब नववधू अपने माता-पिता, बहन-भाई और सखी-सहेलियों का परित्याग करके सर्व प्रथम अपने पतिदेव के घर जाती है तो उस समय उसके लिए वह स्थान बिल्कुल नया और एकदम अपरिचित होता है। भीत, सशंकित मन लिए, एक कोने में बैठी हुई नववधु अपने को वहाँ अनजान और बिल्कुल पर-सी अनुभव करती है। लम्बे अवगुंठन के भीतर छिपी हुई वह देखती किसी को नहीं किन्तु सुनती है सबकी। न जाने कितने कण्ठ स्वर उसके कान में पड़ते हैं, कितनी ही बोलियाँ उसे सुनाई देती हैं—पर वह सब उसके अनजान और अपरचित-सी होती है। उसे अब न तो अपनी माता की स्नेहसिक्त बोली ही सुनाई पड़ती है, न पिता का अधिकारयुक्त भारी

और गम्भीर कण्ठस्वर—न वह अपने बड़े भाइयों की डाट फटकार सुन सकती है, न छोटी-छोटी बहनों की मधुर चीत्कार—न अब वहाँ उसकी भाभी ही है और न सखी-सहेलियों में ही कोई।

नववधु, जो वास्तव में अभी हाल ही में ब्याह होने के बाद यहाँ आई है। ऐसे एकाकी वातावरण में अपने को घिरा हुआ पाकर वह बड़ी विरक्त हो उठती है; पर किसी से कुछ कहने सुनने का उसे साहस नहीं होता या शायद ऐसा करने की उसे जान बूझकर इच्छा ही नहीं होती। विदुषी होने के कारण वह कम से कम इतना ज्ञान तो रखती ही है कि यह घर उसके माता-पिता का नहीं, बल्कि उसके पति का है। चलने से पहले अपनी माता के कहे हुए उसे ये शब्द याद आ गये—'बेटी, तू अब यह घर छोड़कर अपने पति के घर जा रही है—अब वही घर जीवन भर के लिए तेरा आश्रय-स्थल होगा। सास-श्वसुर को माता-पिता से अधिक समझकर उनकी सेवा करना, देवरों के साथ भाई जैसा व्यवहार करना, नन्द को, देवरानी और जेठानी को बहन समझ कर प्यार करना बेटी. पति ही तेरा इष्ट देव है—प्रतिक्षण प्रति समय तू उसकी अपने मन में पूजा करना। उसकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना। अगर किसी समय अप्रसन्न होकर वह तुझे डाँट-फट-कार भी बतलाए तो तू उसकी बात का कदापि बुरा न मानियो और जहाँ तक हो सके अपनी मीठी-मीठी बातों से उसे खुश करने की चेष्टा करियो। अपने मधुर व्यवहार से सास-श्वसुर, जेठ-जेठानी, नन्द और सखी-सहेलियों को सदा प्रसन्न रखना। बेटी, अब तू कुमारी कन्या नहीं—कुलवधु बन गई है। तेरे सिर पर अब एक पूरी गृहस्थी का

भार आने वाला है; इसे तू बड़ी सावधानी और चतुरता से वहन करना। न केवल घर वालों को ही, बल्कि पास पड़ोस के लोगों को भी तू अपने विनीत और सद्व्यवहारों से खुश रखना। देखना, अपने माँ बाप का नाम लजाना नहीं बेटा! ऐसा काम करना कि सब तेरी प्रशंसा करें—किसी को भी तेरी निन्दा करने का साहस न हो। रात-दिन अपने सास-श्वसुर तथा पति की सेवा करने में ही मन लगाना, इसीमें तेरा कल्याण होगा।'

इसी प्रकार की बहुत सी बातें, जो कुल बधू की माँ ने विदाई से पहले उसे समझाई थीं एक-एक कर उसके मस्तिष्क में आ-आकर चक्कर काटने लगीं—एकान्त स्थान में बैठे हुए उसे और काम तो था नहीं—अपनी माँ के दिये हुए उपदेशों को याद कर-कर के वह उन्हीं के अनुसार अपने को बनाने की कल्पना करने लगी। कुलबधु बेचारी अभी अपने इन्हीं खयालों में डूबी हुई थी कि इतने में किसी ने एकाएक पीछे से आकर उसकी दोनों आँखें बन्द कर लीं। उसने हाथ छुड़ाने की बहुत चेष्टा की; पर वह सफल न हो सकी - ज्यों-ज्यों वह हाथ छुड़ाने की चेष्टा करती, त्यों त्यों पकड़ और भी दृढ़ होती जाती। नववधु सहसा झुंझला उठी, उसने टटोल कर देखा—पकड़नेवाले का हाथ तो अत्यन्त कोमल और छोटे-छोटे थे, किन्तु पकड़ बहुत मज-बूत थी।

नववधू ने हार कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—'छोड़ दो मुझे—मेरी आँखें दुखी जा रही हैं।' उत्तर मिला—'पहले बताओ मुझे, कि मैं कौन हूँ?' नववधु बेचारी क्या बताए कि वह किसके सुदृढ़ हाथों में

फँसी हुई है—अभी कुछ ही घन्टे तो हुए कि उसने इस घर में प्रवेश किया; उसे क्या मालूम कि कौन कौन रहते हैं उसके पति के घर में। हां जब वह अपने पिता के घर थी तो उसने एक दिन अपने भाई को मां से कहते सुना था कि—अमुक घर में. ब्याह करने से रजनी बहुत सुखी रहेगी। वर एक अच्छा व्यापारी है' घर में माता-पिता भी अभी जीवित हैं। दो भाई हैं - एक बड़ा और दूसरा वर से छोटा। तीन भाई और दो बहनें जिनमें से एक का विवाह हो चुका है, पर छोटी बहन अभी घर ही पर रहती है। वर का घर हर प्रकार से भरा हुआ है। धन है, सम्पत्ति है, सगे सम्बन्धी सभी कोई हैं।

नववधु पढ़ी-लिखी और समझदार तो थी ही—सोचते सोचते

इस प्रकार नव-वधु का अपनी ससुराल में आकर सबसे पहिले छोटी ननद के साथ ही परिचय हुआ। उसने देखा, तेरह-चौदह वर्ष की वह छोकरी उसके साथ बड़ा प्रेम, स्नेह और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार कर रही थी। ऐसे ही व्यवहार की उसने दूसरों से भी कल्पना की। रजनी ने देखा, सारे कुटुम्बी एक दूसरे बड़े कमरे में जमा हो रहे थे—स्त्रियों और बच्चों का कोलाहल भी बढ़ता हुआ बाहर के बरामदे की ओर चला गया था। जान पड़ता था, टोला-मोहल्ला की स्त्रियें, जो नववधु को देखने के लिये आई थीं अब उसे देखने के बाद वापस जारही थीं और उन्हीं को द्वार तक पहुँचाने के लिए घर की स्त्रियें भी बाहर के बरामदे तक जा पहुँची थीं तथा उनके साथ ही साथ बच्चे भी बाहर चले गये थे।

अपने चारों ओर कुछ एकान्त-सा देख कर नववधु ने बड़े स्नेह से

अपनी छोटी ननँद का हाथ अपने हाथ में थाम्ह कर अत्यन्त कोमल शब्दों में पूछा,—"तुम्हारा नाम क्या है ननँदरानी ?" चंचल बालिका ने चट-से उत्तर देते हुए कहा,—"नाम,—मेरा ? सुनकर क्या करोगी भाभी ? बता दूँ, तो डर न जाओगी ?" बुद्धिमती भाभी फौरन ताड़ गई कि छोकरी बहुत वाचाल है, अतः वह किंचित मुस्कराकर बोली,—"डरूँगी क्यों भला—फिर तुम जहां हो, वहां डरने का क्या काम ? तुम बताओ तो जरा, किस शुभ नाम से तुम्हें लोग याद करते हैं ?" ननँद आँखें मटका कर बोला,—"जी, हम तुच्छ दास को लोग सिर्फ 'कुँवर साहब श्री सुरेन्द्रकुमार वर्मा' के नाम से पुकारते हैं; और वह भी अधिकतर लोग तो केवल 'कुँवर साहब' ही कह कर रह जाते हैं।" नववधु से न रहा गया—वह धीरे से खिलखिला कर हँस ही पड़ी और अपनी चंचला ननँद की ठोठी पकड़ उसे नर्मी से दबाती हुई बोली,—'बनाओ नहीं लाला, मैं भी तुम्हें खूब पहचान गयी हूँ। यह नाम तुम्हारा है या तुम्हारे उनका'·····'कहते-कहते वह स्वयं ही लजा कर नीचे को झुक गई और आगे एक शब्द भी अपने मुख से न कह सकी। ननँद की छेड़खानी दम पर दम बढ़ती जाती थी। बड़ी ढिठाई से उसने कहा,—"तुम तो बड़ी चालाक हो भाभी! ब्याह होने के पहले ही तुम मेरे भइया का नाम जान गई········?" नववधु अपने पति का नाम सुनते ही एक दम शर्मा गई, पर शीघ्र ही सम्हल कर बोली,—"उनका नाम तो मैं बहुत पहले ही जान गई थी, पर अब तुम्हारा जानना चाहती हूँ" ननँद ने हँस कर कहा,—"मैं तो समझती थी कि तुम निरी बुद्धू हो भाभी, पर अब जान गई कि यों

तुम मेरे फंन्दे में न फँसोगी। लो, सुनो! मेरा नाम है राधारानी!"

"राधारानी!" हठात् नववधु ने उसकी कमर में चिकोटी भरकर कहा,—"अरे, क्या गजब करती हो राधे प्यारी! तुम्हारे कन्हैया कहां चले गये तुम्हें छोड़ कर?" ननँद अपनी भाभी की बात सुन कर लजा गई और उसने रजनी की गोद में अपना मुख डालकर छिपा लिया—किन्तु रजनी भी एक ही वाचाल थी। वह चुप न हुई—अब उसकी बन आई थी अतः वह इसे चिढ़ाने के लिए बोलती ही चली गई। उसने कहा,—"हाय, हाय, अपने मोहन के वियोग में क्या दशा हो गई है मेरी राधे-प्यारी की। बड़े निष्ठुर हैं श्याम—उन्हें तो अपनी बँसी ही प्यारी है, भले ही उनके वियोग में राधा बेचारी तड़फती रहे।"

अबतो राधारानी से भी रहा न गया। चट् अपने हाथ से उसने भाभी का मुख दबाते हुए कहा,—"अब बस भी करोगी या बुदबुदाती ही रहोगी। तुम क्या जानो भाभी, कि श्याम को उनकी बँसी कितनी प्यारी है! इसी बँसी को जब वे अपने पतले और कोमल होंठ पर रख कर फूंकने लगते हैं, तो सारी दुनियां मोहित होकर उनकी ओर देखने लगती है।"

"ओहो, तो ऐसे हैं वे श्याम तुम्हारे!" भाभी ने तनिक हास्य के साथ कहा,—तबतो सौतिया डाह के कारण रोज-रोज गृह-कलह ही लगा रहता होगा। भई, सावधान रहना जरा अपने श्याम की दासी से—कहीं ऐसा न हो कि वह दुष्टा धीरे-धीरे तुम्हारे समस्त अधिकारों पर ही

अपना कब्जा न जमा बैठे, नहीं तो फिर मोहन से तुम्हें हाथ ही धोना पड़ेगा।"

"जाओ भाभी तुम तो बड़ी खराब हो!" राधारानी ने लज्जावश अपना मुख फिर नववधु के पल्ले में छिपा लिया। रजनी सस्नेह उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली,—इतना शर्माओ नहीं ननँदरानी एक न एक दिन तो तुम्हें अपने मोहन के पास जाना ही पड़ेगा। ध्यान रखो, तुम्हारी-तपस्या निष्फल न होगी। तुम मन ही मन जिन्हें पूजती हो, वह एक न एक दिन तो जरूर··· ·····"

"फिर वही बात कहने लग पड़ीं भाभी!' राधा ने फिर नववधु का मुख अपने कोमल हाथ से ढंकते हुए कहा और बोली,—"अभी तो मैं 'महिला-विद्यालय में पढ़ने जाती हूँ। वहां पढ़ते हुए भला मैं किसकी तपस्या करूँगी सिवाय पढ़ने के।"

"बात न बनाओ ननँदरानी!" भाभी ने मुस्काते हुए कहा,—"स्कूलों, कालेजों, विद्यालयों और महाविद्यालयों में ही तो अधिकतर प्रेमाभिनय सीखा जाता है। सहशिक्षा का प्रचार होने के कारण—बुरा न मानिये बीबी जी, तुम्हारी जैसी नई-नवेली और अल्हड़ जवानी की मतवालियों के लिये अपना कार्य करने में और भी सुगमता हो गई है—क्यों, है न यह बात?"

यह कहकर भाभी ने बड़े प्यार से राधा की ठोठी पकड़ कर उसका मुख अभी ऊपर उठाया ही था कि इतने में पीछे से एक आवाज आई—"ओहो, इतना जल्दी तुम दोनों में इतना प्रेम बढ़ गया!" कहती हुई नववधु की जेठानी ने कमरे में प्रवेश किया, इसी के पीछे-पीछे

वृद्धा सास भी वहां आ पहुंची। टोले-मोहल्ले की स्त्रियें नववधू का मुख देख-देख कर सब अपने घरों को वापस जा चुकी थीं और अब केवल परिवार की ही खास-खास औरतें वहां रह गई थीं। सन्ध्या होने को आई थी, सूर्य पश्चिमी-क्षीतिज को पार करके अपनी किरणों को समेटते जा रहे थे और पूर्व-दिशा से रात्रि का अन्धकार उमड़ता हुआ मानो अखिल विश्व में अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा कर रहा था। स्वच्छ नीलाकाश झिलमिलाते हुए लघु-तारागण की टिम-टिम ज्योति' में अलोकित होकर एक मनमोहक दृश्य उपस्थित कर रहा था, तभी वहां सुहागरात के लिए तैयारियां की जा रही थीं।

३

सुहागरात

> आई सुहागरात, सखि न सुहात आज,
>
> पिय बिन बिछोह की, लम्बी रतियाँ।
>
> उठत कलेजे हूक, जलत है मोर बूक,
>
> करे न कोऊ हाय, प्रेम भरी बतियाँ॥

सुहागरात क्या है? यह वह शब्द है—जिसके उच्चारण मात्र से नव-विवाहित पति या पत्नि के हृदय में एक गुद-गुदी-सी उठने लगती है; यह वह अनोखी रात है—जिसके स्मरण मात्र से वर-वधु के मन में एक अद्भुत उल्लास, एक अपूर्व सुख और एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होने लगता है। साधारणतया यदि देखा जाये, तो सुहाग रात से हमारा अभिप्राय विवाह की प्रथम रात्रि से है। विवाहोत्सव एवं उसके संस्कार के समस्त कृत्यों के पूर्ण हो जाने पर भारतीय-गृहों में प्रायः पति के घर—या कभी-कभी नववधु के पितृालय में रात्रि के समय पति और पत्नि का मिलाप कराया जाता है—उस सुखदायी रात्रि को ही सुहागरात कहते हैं।

विवाहोपरान्त पति-पत्नि का प्रथम-मिलन बहुत ही महत्वपूर्ण है—उनके सारे जीवन का सुख इसी प्रथम-मिलन की सार्थकता पर निर्भर है। प्रथम-दर्शन में पति-पत्नि अपने हृदय में परस्पर जो दृष्टिकोण निर्माण करते हैं और इस समय उनके हृदय में जो भाव और विचार उदय होते हैं, उनका उन दोनों के जीवन पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। यह प्रथम-मिलन ही पति-पत्नि को एक-दूसरे के निकट घसीट लाता है, और वे परस्पर एक ऐसे दृढ़-बन्धन में आबद्ध हो जाते हैं कि जिससे निकल सकना उनके लिये फिर जीवन भर संभव नहीं। इसी अवसर पर—इसी सुहागरात में पति-पत्नि दोनों एक-दूसरे को चीन्हने-पहिचानने और समझने का चेष्टा करते हैं।

सुहाग-रात, जो वास्तव में कोरी सुहाग-रात ही न होकर नवबधु के लिये सौभाग्य-रात्रि भी है—एक ऐसा भाव-सूचक सुंदर शब्द है, जिसके साथ दाम्पत्य-जीवन के उच्च आदर्श सम्मिलित हैं। सुहाग-रात, वह सौभाग्य की रात्रि है, जबकि पत्नि प्रथम बार अपने पति के जी भर कर दर्शन करती है! पति-दर्शन के साथ ही साथ उसका सौभाग्य-सूर्य उदय होता है, और उसके भावी-जीवन को आलोकित करता हुआ, उसमें बल-बुद्धि, आनन्द-उत्साह, नव-जीवन और स्फूर्ति का संचार करता है। इसी सुहाग-रात, इसी प्रथम-मिलन और इसी शुभ-अवसर से पत्नी 'सौभाग्यवती' कहलाती है।

इसमें सन्देह नहीं, कि प्रथम-मिलन के समय पत्नी को स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण संकोच होना स्वाभाविक ही है। उस रात में घटित प्रत्येक घटना चल-चित्र के समान नवबधु के मस्तिष्क में घूमती रहती

हैं। उस समय की एक-एक बात, एक-एक क्रिया एवं एक-एक चेष्टा ऐसी मनमोहक एवं हृदय-स्पर्शी होती है कि आयु-पर्यन्त जिसकी मधुर स्मृति शरीर में रोमांच पैदा करके दिलको गुदगुदाया करती है। इस दिन रात्रि के समय जब पति के सुसज्जित कमरे में वर-वधु दोनों प्रवेश करते हैं तो प्रत्येक के मन में एक नई भावना, नई कल्पना, नूतन साहस और नया उत्साह भरा हुआ होता है।

देखिये, अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में एक कुल-कामिनी की क्या दशा होती है :—

साँझ सुनि पिय आवन की,
तब चातुरि नारि शृंगार बनायो।
पीलीहि केशर पीलीहि वेशर,
पीलीहि हार हिये लै लायो॥
पीलीहि पान धरयो मुखमें,
अरु पीलीहि बिन्दी से नेह लगायो।
पीवहि पीव पुकार रही,
सखि! पीरि भई पर पीव न आयो।

देखिये, एक-तरफा प्रीति के लिये किसी कवि ने क्या ठीक लिखा है:—

चन्द्र की चाह चकोर करै,
निशि दीपक ज्योति जरैजू पतंगी।
मोर मरै घनघोर घटा बिन,
मीन मरै बिछुरत जल संगी।

स्वाति को बूंद पपीहा चहै,
छिद जाय गुलाब पे भंवर विहंगी।
ये छुय चाहत वे न चहैं,
जरि जाय सखी यह प्रीति एकंगी।

किन्तु इसके विपरीत समान प्रीति कैसी होती है—यह भी जरा सुन लीजिये :—

क्षीर में नीर मिलाय दियो,
तब आपुन रूप सभी दरसायो।
सहज स्वभाव की आंच लगी,
तब नीर ने आपुन अंग जलायो॥
जल्यो नीर तब चल्यो क्षीर,
घट बाहर आयके मित्र बुलायो।
मिल्यो नीर तब रुक्यो क्षीर,
यह सच्चे मित्र ने प्रीति निभायो॥

और लोक भी है कि:—प्रीति तो ऐसी कीजिये जैसी करे चकोर।
चोंट टूट गर्दन हिले, चितवे वाही ओर॥

सुहाग रात में नववधू सोलह शृंगार कैसे करती है, यह भी जरा सुन लीजिये :—

मिस्सी रेखकारी सोभा दन्त की सुधारी अङ्ग,
मर्दन किये प्यारी छिप स्नान करन वारी है।
नवल वसन धारि नाल गूंथन गोमवारि,
मांग बिन्दी ने सवारि अङ्ग गोरे रंग प्यारी है।

चूड़ला हाथ भारी नयन सुर्मा रेखकारी,
मेंहदी शोभा तेत न्यारी पान चावत पधारी है।
अतर फूल वारी टीका सज्यो नवल नारी,
कीन्हाँ सोलहूँ शृंगार जैसे चन्द्र की उजारी है॥

प्रथम-मिलान और सहवास

कुछ लोगों को ऐसा ख्याल है कि सुहाग रात या प्रथम-मिलान के समय ही पत्नि के साथ सम्भोग कर लेना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से उनकी पत्नि के हृदय में जवाँ मर्द होने का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ जायेगा और फिर वह जीवन भर उनकी चेरी या दासी बन जायेगी। यह शेखी से भरा हुआ वाहियात ख्याल है और ऐसा वे ही लोग सोच सकते हैं जो या तो शराबी हों अथवा चरित्र हीन या कामी। शिष्ट, सभ्य और बुद्धिमान लोगों का तो ऐसा सोचते हुए भी लज्जा का अनुभव होता होगा। शेखी बघारने अथवा पत्नि पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये तो सारा जीवन ही पड़ा हुआ है।

सुहागरात के दिन जब नवधधु को स्त्रियाँ पति के 'शयन-कक्ष' में भेजती हैं, तो उस समय उस अबोध और भोली भाली नववधु के मस्तिष्क में कैसे-कैसे विचार उठते हैं, हृदय किन कोमल भावनाओं से उद्वेलित हो उठता है—इसे यदि कोई समझ कर उसी के अनुसार कार्य करे तो वह सहज ही अपनी पत्नि के मन को जीत कर उसका सच्चा स्वामी बन सकता है। नववधु जब पति के 'शयन गृह' में धड़कते हुए हृदय से प्रवेश करती है तो पति को वहाँ न पाकर उसे कुछ थोड़ा-सा सन्तोष होता है और वह बिछे हुए सुसज्जित पलंग पर

बैठ या लेट कर अपनी मनः स्थिति को ठीक करती हुई कल्पना की दौड़ में दूर-दूर विचरण करती है।

नववधु, यदि वह बुद्धिमति है तो उस कमरे के वातावरण से वह सहज ही में जान जाती है कि वह किस का कमरा है और उसे वहाँ क्यों भेजा गया है। उस समय नाना प्रकार के भाव उसके मस्तिष्क में उठते और विलीन होते हैं—और इस प्रकार भाव-वारिधि में डूबते उतराते हुए उसे कुछ अस्पष्ट, पर निश्चित रूप में यह आभास होता है कि पति से जो आचरण करना होगा, उस का कुछ न कुछ सम्बन्ध 'काम (SEX)-से अवश्य है। काम भाव की कुछ अस्पष्ट-सी झलक उसकी विचार-धारा को रंग देती है। इतने में ही वहाँ पतिदेव का आगमन हो जाता है, और वह तुरन्त उठ कर अपने कपड़े सँभाल खड़ी हो जाती है। सुहाग-रात को पत्नि जिस अज्ञानता का परिचय देती है, उसका मुख्य कारण उसकी काम-विज्ञान से अनभिज्ञता ही है। समाज में पुरुषों ने कुछ ऐसे भाव प्रचलित कर रखे हैं, जिनके कारण स्त्रियाँ यह समझने लगी हैं कि काम विज्ञान का अध्ययन तो पुरुषों के लिये आवश्यक है, न कि स्त्रियों के लिये भी। पर, इसी अज्ञान के कारण बहुतेरी बहनों का सुहाग मिट्टी में मिल जाता है।

सुहागरात में पति दांपत्य-प्रेम की अभिव्यक्ति के लिये अत्यन्त इच्छुक होता है। पुरुष की यह प्रकृति है कि वह प्रेम करता है—केवल इसीसे सन्तोष नहीं पाता। वह चाहता है, कि मैं इस प्रेम को प्रकट करूँ। नारी का स्वभाव ठीक इसके विपरीत है। वह पुरुष को चाहे जितना प्रेम करे, परन्तु वह अपने प्रेम को अप्रकट ही रखती है। प्रथम

२८

दर्शन होने पर पत्नी को स्नेह-पूर्वक अभिवादन करना चाहिये। आर्य-सभ्यता के अनुसार दोनों करों को जोड़ कर नत-मस्तक हो, नमस्कार करने की प्रथा सर्वोत्तम है। पति पत्नी को भी मिलने के समय परस्पर 'नमस्ते' करना चाहिये। योरप और अमेरिका आदि पश्चिमीय देशों में अभिवादन 'कर-स्पर्श' द्वारा किया जाता है, और पति-पत्नी तथा प्रेमी प्रेमिकाओं में 'चुम्बन' का रिवाज पाया जाता है। किन्तु प्रथम-दर्शन के समय 'चुम्बन' सर्वथा अनुपयुक्त है। पति की यह इच्छा होती है कि पत्नी समीप बैठ कर प्रेम-पूर्वक वार्तालाप करे, परन्तु लज्जावश वह वार्तालाप करने में आनाकानी करती है। कभी कभी तो यह मौनावलम्बन इतना अधिक बढ़ जाता कि पति को अधीर हो जाना पड़ता है, और उसके मन में यह विचार उत्पन्न होने लगते हैं कि पत्नी उसे प्यार नहीं करती। पत्नी को ऐसी अवस्था उत्पन्न होने के पूर्व ही सावधान हो जाना चाहिये, और अपनी मर्यादा के अनुसार वह पति के साथ वार्तालाप करे।

४

दांपत्य-सुख

"प्रणय-मधुर, आलस भरे, सरस, सनेह-समेत—
मृग-नैनिन के ये वचन, हरे चित्तको लेत।"

जब पत्नी संभाषण में संलग्न हो जाती है, तो पति चुम्बन और आलिङ्गन द्वारा प्रेम प्रकट करता है। इन प्रेमाचारों के प्रति पत्नी को न तो उदासीन-वृत्ति ग्रहण करनी चाहिये, और न किसी प्रकार की अरुचि या ग्लानि ही प्रकट करनी चाहिये। और सत्य तो यह है कि जो पत्नी हृदय से पति को प्रेम करती है, वह कदापि उसके चुम्बन या आलिङ्गन से उदासीन नहीं रह सकती है। यह अनुभव की बात है। यह बिलकुल सच कहा है—पति के प्रेमाचारों से घृणा करने का मतलब तो यह है कि पत्नी अपने पति को चाहती ही नहीं। यदि दुर्भाग्यवश को पति के मन में यह सन्देह उत्पन्न हो गया कि पत्नी उसे नहीं चाहती, तो इससे उन दोनों का ही जीवन दुखी बन जायेगा। पति प्रेमदान का प्रतिदान चाहता है, और पत्नी को प्रेम का प्रतिदान देने में कोई भय, किसी तरह की शंका या संकोच करने की जरूरत ही नहीं है।

इस अवसर पर पान-सेवन करना भी अधिक उपयुक्त है। इसमें सन्देह नहीं कि पान-सेवन कराने की प्रथा बहुत-कुछ समझ-बूझ कर चलाई गई है, क्योंकि पान एक कामोत्तेजक वस्तु है इसके सेवन करने से मुख का स्वाद ठीक होकर उसमें सुगंध भर जाती है। इसके सेवन करने से कामोत्तेजन होता है; इसीलिये इस अवसर पर इसका व्यवहार लाभदायक माना गया है। सुगंधित वस्तुएँ—इत्र व खुशबूदार तैल इत्यादि भी कामोत्तेजक माने गये हैं। सद्य-स्फुटित गंधयुक्त पुष्पों के हार भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। यही कारण है कि पति-पत्नी ऐसे अवसर पर पुष्पों के हार धारण करते हैं, और पत्नी अपने केशों में सुगंधित तैल डाल कर उन्हें रंग-बिरंगे फूलों से सजाती है। पुष्प-शय्या का प्रबंध भी इसी लिये किया जाता है। यदि किसी को पान खाने का शौक न भी हो, तो उसे भी ऐसे अवसर पर पान अवश्य खाना चाहिये।

बुद्धिमान लोगों से अब यह बात छिपी हुई नहीं है कि स्त्री त्याग की मूर्ति है। उसमें बड़े से बड़ा बलिदान करने की शक्ति का अक्षय भण्डार है। परन्तु जब तक उसे पूरा विश्वास न हो जाये कि जिसके चरणारविंदों में वह आत्म समर्पण कर रही है, वह उसके सिवा और किसी भी स्त्री के प्रति आकृष्ट नहीं है, तब तक वह अपना सर्वस्व अर्पण नहीं कर सकती। जब पति के श्री मुख से पत्नी विवाह-समय पर की गई प्रतिज्ञाओं को दुहराते हुए सुनती है, तो उसकी श्रद्धा जागृत हो जाती है। उसमें पति के प्रति विश्वास पैदा हो जाता है। जब पति यह कहता है कि—"हे प्राणेश्वरी! मैं ने विवाह-संस्कार के समय जो

प्रतिज्ञाएँ की थीं, उनका मैं आजीवन पालन करता रहूँगा। मैं मन, वचन, कर्म से एक-पत्नीव्रत का पालन करते हुए सदैव तुम्हारे सुख-दु:ख में जीवन-संगी रहूँगा। मैं तुम्हारे सुख में अपना सुख और तुम्हारे दु:ख में अपना दु:ख समझूँगा। मैं तुम्हें सुखी बनाने के लिये सर्वदा प्रयत्न करूँगा। हम-दोनों में परस्पर प्रेम की वृद्धि होती रहे। इस भावना से प्रेरित होकर अपनी प्रत्येक क्रिया करूँगा। तुम मुझ पर पूर्ण विश्वास रक्खो। संसार में तुम्ही एक मात्र मेरी जीवन-संगिनी हो, जिसके समक्ष मैं अपना हृदय खोल कर रख सकता हूँ। हम दोनों दो शरीरों में एक आत्मा बन कर रहें। तब पत्नी पति के चरणों में आत्म-समर्पण कर देती है। नारी को जैसे जीवन-साथी की चाह है, यदि वैसा उसे मिल गया, तो वह क्यों न उसे अपने आपको सौंप दे? अब पति-पत्नी के बीच किसी भी प्रकार का पर्दा करना छल-कपट और विश्वासघात होगा। पति से न हृदय का कोई भेद छिपाया जाये, और न शरीर का ही।

यह बात सदैव याद रखनी चाहिये कि पवित्र दांपत्य-प्रेम गृहस्थ-जीवन का आधार है। जब दंपति—पति या पत्नी—परस्पर शुद्ध भाव से प्रेम करते हैं, तभी वह वास्तव में एक-दूसरे के विचारों और मनो-भावों का आदर कर सकते हैं। जिस पति या पत्नी में पवित्र प्रेम का अभाव होता है, और केवल पाशविक-मनोवृत्ति की ही प्रबलता होती है, वह एक-दूसरे के मनोभावों का आदर नहीं कर सकते। दांपत्य-प्रेम के अभावों में जीवन नीरस और दु:खान्त बन जाता है। जिस घर में दांपत्य-प्रेम न हो, उस घर में पति-पत्नी-कलह, गृह-कलह, सम्बंध-

इस अवसर पर पान-सेवन करना भी अधिक उपयुक्त है। इसमें सन्देह नहीं कि पान-सेवन कराने की प्रथा बहुत-कुछ समझ-बूझ कर चलाई गई है, क्योंकि पान एक कामोत्तेजक वस्तु है इसके सेवन करने से मुख का स्वाद ठीक होकर उसमें सुगंध भर जाती है। इसके सेवन करने से कामोत्तेजन होता है; इसीलिये इस अवसर पर इसका व्यवहार लाभदायक माना गया है। सुगंधित वस्तुएँ—इत्र व खुशबूदार तैल इत्यादि भी कामोत्तेजक माने गये हैं। सद्य-स्फुटित गंधयुक्त पुष्पों के हार भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। यही कारण है कि पति-पत्नी ऐसे अवसर पर पुष्पों के हार धारण करते हैं, और पत्नी अपने केशों में सुगंधित तैल डाल कर उन्हें रंग-बिरंगे फूलों से सजाती है। पुष्प-शय्या का प्रबंध भी इसी लिये किया जाता है। यदि किसी को पान खाने का शौक न भी हो, तो उसे भी ऐसे अवसर पर पान अवश्य खाना चाहिये।

बुद्धिमान लोगों से अब यह बात छिपी हुई नहीं है कि स्त्री त्याग की मूर्ति है। उसमें बड़े से बड़ा बलिदान करने की शक्ति का अक्षय भण्डार है। परन्तु जब तक उसे पूरा विश्वास न हो जाये कि जिसके चरणारविंदों में वह आत्म समर्पण कर रही है, वह उसके सिवा और किसी भी स्त्री के प्रति आकृष्ट नहीं है, तब तक वह अपना सर्वस्व अर्पण नहीं कर सकती। जब पति के श्री मुख से पत्नी विवाह-समय पर की गई प्रतिज्ञाओं को दुहराते हुए सुनती है, तो उसकी श्रद्धा जागृत हो जाती है। उसमें पति के प्रति विश्वास पैदा हो जाता है। जब पति यह कहता है कि—"हे प्राणेश्वरी! मैं ने विवाह संस्कार के समय जो

प्रतिज्ञाएँ की थीं, उनका मैं आजीवन पालन करता रहूँगा। मैं मन, वचन, कर्म से एक-पत्नीव्रत का पालन करते हुए सदैव तुम्हारे सुख-दुःख में जीवन-संगी रहूँगा। मैं तुम्हारे सुख में अपना सुख और तुम्हारे दुःख में अपना दुःख समझूँगा। मैं तुम्हें सुखी बनाने के लिये सर्वदा प्रयत्न करूँगा। हम-दोनों में परस्पर प्रेम की वृद्धि होती रहे। इस भावना से प्रेरित होकर अपनी प्रत्येक क्रिया करूँगा। तुम मुझ पर पूर्ण विश्वास रक्खो। संसार में तुम्ही एक मात्र मेरी जीवन-संगिनी हो, जिसके समक्ष मैं अपना हृदय खोल कर रख सकता हूँ। हम दोनों दो शरीरों में एक आत्मा बन कर रहें। तब पत्नी पति के चरणों में आत्म-समर्पण कर देती है। नारी को जैसे जीवन-साथी की चाह है, यदि वैसा उसे मिल गया, तो वह क्यों न उसे अपने आपको सौंप दे? अब पति-पत्नी के बीच किसी भी प्रकार का पर्दा करना छल-कपट और विश्वासघात होगा। पति से न हृदय का कोई भेद छिपाया जाये, और न शरीर का ही।

यह बात सदैव याद रखनी चाहिये कि पवित्र दांपत्य-प्रेम गृहस्थ-जीवन का आधार है। जब दंपति—पति या पत्नी—परस्पर शुद्ध भाव से प्रेम करते हैं, तभी वह वास्तव में एक-दूसरे के विचारों और मनो-भावों का आदर कर सकते हैं। जिस पति या पत्नी में पवित्र प्रेम का अभाव होता है, और केवल पाशविक-मनोवृत्ति की ही प्रबलता होती है, वह एक-दूसरे के मनोभावों का आदर नहीं कर सकते। दांपत्य-प्रेम के अभावों में जीवन नीरस और दुःखान्त बन जाता है। जिस घर में दांपत्य-प्रेम न हो, उस घर में पति-पत्नी-कलह, गृह-कलह, सम्बंध-

विच्छेद, तलाक, गुप्त-व्यभिचार, वेश्या-वृत्ति, नारी-अपहरण और अप्राकृतिक सम्बन्ध पैदा हो जाते हैं। पवित्र प्रेम पति को पत्नीव्रती और स्त्री को पतिव्रता बनाता है। वर्तमान युग में वैवाहिक-अपराधों और काम्य अशान्ति का प्रमुख और मौलिक कारण है पति-पत्नी में काम-सम्बन्धी असामंजस्य ही एक मात्र। जिस पति-पत्नी का जीवन काम की दृष्टि से पूर्णतया सतुष्ट और परस्पर सुखी है, वे अपने जीवन में एक पत्नीव्रत को भंग करने की कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते। वास्तव में सच्चा दांपत्य-प्रेम ही गृहस्थ-जीवन का सच्चा सुख है।

एक नया अनुभव

विवाहित जीवन में प्रथम सहवास एक नूतन अनुभव है, जिसका पति या पत्नी को पहले से क्रियात्मक ज्ञान नहीं होता। पत्नी—विशेषतया भारतीय-पत्नी काम-विज्ञान के रहस्यों से सर्वथा अनभिज्ञ होती है। और, ऐसी दशा में यदि पति भी काम-विज्ञान से कोरे ही निकले तो वास्तव में सुहागरात का सारा मजा ही किरकिरा हो जावेगा। काम-कला-निपुण पति अपने प्रेम-व्यवहार से स्थिति को संभाल लेते हैं और सुहागरात को सुखान्त बना देते हैं। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि पत्नी अपने पति के कार्य में पूर्ण रूप से सहयोग दे; अन्यथा उसका सारा आनन्द ही धूल में मिल जायेगा।

नारी स्वभाव से ही लज्जाशील और सँकोचवती होती है। सदियों के संस्कारों ने उसे लज्जाशील बना दिया है। वह चाहे अन्य अवसरों पर अपनी लज्जा का त्याग भले ही कर दे, पर खास तौर पर ऐसे समय तो उसकी लज्जा और भी अधिक बढ़ जाती है। वह इस लज्जा के

कारण ही अपने मनोभाव और कामनाएँ ऐसे 'अपरिचित' के सम्मुख सहसा व्यक्त करने में असमर्थ रहती है, जिसे उसने न पहले कभी देखा, न पढ़ा, और न ही समझा। यह बड़ी विचित्र बात है कि उसकी यह लज्जा, जो इस समय पति को बड़ी अवांछनीय और बुरी प्रतीत होती है, उसके सतीत्व की रक्षा के लिये एक कवच का काम करती है। इस नारी-सुलभ लज्जा के कारण ही विवाहित जीवन में उसकी प्रेम-सरिता का प्रवाह स्थिर और शान्त रहता है। यह एक ज्वलन्त सत्य है कि पुरुष का नारी के प्रति काम भाव सहसा जागरित हो जाता है, मानों वह इसके लिये पहले से तत्पर हो; परन्तु पुरुष के प्रति नारी का काम-भाव शनैः-शनैः जागरित होता है, और सत्य तो यह है कि पत्नी के काम-भाव को जागरित करने में पति का प्रेमाचरण जादू का-सा काम करता है।

पति की प्रेम पूर्ण, मधुर वचनावली से हृदय में जो अपूर्व उल्लास होता है, वह किसी प्रकार शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। उसके कोमल स्पर्श, चुम्बन और आलिंगन से पत्नी के समस्त शरीर में एक प्रकार की बिजली-सी दौड़ जाती है। शरीर के अंग-प्रत्यंग में एक अद्भुत जोश पैदा हो जाता है, और अन्त में पति-पत्नी में कामेच्छा इतनी प्रबल हो जाती है कि दोनों के शरीर चुम्बक की भाँति एक दूसरे की ओर आकृष्ट होकर परस्पर मिल जाना चाहते हैं। इस समय कुल-बालाओं का आचरण मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। वाराङ्गनाएँ—वेश्याएँ अपनी सारी लज्जा को त्याग कर जैसा कुत्सित आचरण करती हैं, वैसा कुल-वधू कभी भूल कर भी नहीं करना चाहतीं प्रथम सह-

वास के समय कुलवधू से ऐसे आचरण की आशा करना भी मूर्खता होगी। यह सत्य है कि पत्नी में, मर्यादा के भीतर—रसिकता, हाव-भाव तथा नवयौवन की तरंगें होना जरूरी हैं। पर ज़रा यह भी तो सोचिये कि नववधू में ये हाव-भाव हो कैसे सकते हैं।

भर्तृहरि ने अपने 'शृङ्गार-शतक' में नारी की काम-प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण इस प्रकार किया है—'जब पति सहवास की इच्छा, अपनी चेष्टा द्वारा, शब्दों द्वारा नहीं, प्रकट करता है—तब कुलबधू पहले तो न न कहती है, और थोड़ी देर के पश्चात् ही फिर वह संभोग इच्छा से अपनी मौन-स्वीकृत दे देती है। इसके बाद वह लजाती हुई, अंगों को ढीला कर अधीर हो प्रेम के रस में डूब जाती है। फिर एकान्त-रति की इच्छा करती है, और संभोग के समय में विविध प्रकार की चातुरी दिखलाती हुई निःशंक होकर चुम्बन-आलिङ्गन से अपूर्व आनन्द देती है।" पति को प्रथम संभोग के समय यथेष्ट सावधानी से काम लेना चाहिये।

कुमारीत्व-भंग

स्त्रियों की बाह्य जनेन्द्रीय की रचना कुछ ऐसे ढंग से की गई है, जिससे स्वतः ही उसकी रक्षा होती रहती है। यह प्रकट है कि कुमारिका की योनि एक पतले चर्मके पर्दे से ढँकी रहती है। प्रकृति ने यह व्यवस्था इसी लिये की है कि कुमारावस्था तक योनि की स्वतः ही रक्षा होती रहे। योनि के पर्दे में एक छोटा-सा छिद्र होता है, जिससे मासिक-धर्म के समय रज बाहर निकलता है। जब प्रथम बार पति कुमारी से सागमन करते हैं, तो यह स्वाभाविक है कि यह कोमलत्वचा शिश्नके संघर्ष से

फट जाये । इसके फटते समय वेदना होती है और कुछ थोड़ा-सा रक्त भी निकलता है । इसके लिये स्त्री को चिन्तित होने की जरूरत नहीं । यदि स्त्री अपनी दोनों जंघाओं को मिला कर चित लेटी रहे, तो कुछ देर बाद रक्त स्वयं बन्द हो जाता है, और वेदना भी बन्द हो जाती है । अनेक पति और पत्नियों को जनेन्द्रियों की रचना से अनभिज्ञता होने के कारण इस तथ्य का ज्ञान नहीं होता । इस लिये वे यह समझने लगते हैं कि यह रक्त या तो योनि से निकला है अथवा शिश्नसे, और बस, वे भयभीत हो जाते हैं । यह सत्य है कि प्रथम चार-पांच सहवासों (Copulations) में स्त्री को आनन्द नहीं मिलता, और इसी कारण पुरुष भी आनन्दानुभव से वंचित रहता है । इसका कारण ही यह है कि योनि-मार्ग अत्यधिक संकुचित होता है, और जब तक दो चार बार मैथुन से वह शिश्न को पूरी तरह ग्रहण करने योग्य न बन जाये, तब तक स्त्री को वेदना ही होती है; किन्तु फिर पति-पत्नी दोनों को ही आनन्द मिलना शुरू हो जाता है ।

यह बिलकुल गलत धारणा है कि सहवास तो पति के ही आनन्द के लिये है, और पत्नी को सहवास से कोई आनन्द नहीं आता । पति आनन्द से हीं पत्नी को सुख मिलता है । यह गलत धारणा ही स्त्रियों के साथ होने वाले दांपत्य-अत्याचार का मूल कारण है । पुरुष यह समझते हैं कि स्त्रियाँ तो संभोग के लिये हर समय तैयार रहती हैं, और उनकी जननेन्द्रीयों की रचना भी ऐसे ढंग से की गई है, जिससे उन्हें पुरुष-जननेन्द्रीयों की भाँति, किसी प्रकार की उत्तेजना या प्रसारण (Erection) की जरूरत नहीं । परन्तु यह बात तब में बड़ी भूल

है। स्त्री हर समय संभोग के लिये तैयार नहीं होती। उसमें कामेच्छा जागरित हो गई हो, तभी उसे पति के सहवास की जरूरत होती है। इसलिये चतुर पति का यह कर्तव्य है कि वह संभोग आरम्भ करने के पूर्व पत्नी से स्वीकृति ले ले।

यह बात सर्वदा ध्यान में रखनी चाहिये कि जब स्त्री मासिक-धर्म हो, तब कभी भूल कर भी स्त्री समागम नहीं करना चाहिये। इससे स्त्री और पुरुष दोनों के स्वास्थ्य को हानि पहुंचती है। मासिक-धर्म के समय योनि से जो रक्त बहता है, वह अति दूषित होता है, उससे इन्द्रिय के स्पर्श होने से अनेक रोग हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि इन दिनों योनि में कोमलता अधिक आ जाती है और उत्तेजना भी काफी हो जाती है; इसलिये ऐसे समय समागम करने से योनि के विकृत हो जाने का भय है। संभोग में स्त्री को पुरुष के समान ही आनन्द प्राप्त होता है। जिस समय मैथुन की समाप्ति पर—वीर्यपात के समय, पुरुष को कुछ क्षणों के लिये अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है, वैसा ही आनन्द स्त्री को भी प्राप्त होता है। यदि पुरुष और स्त्री को यह आनन्द एक ही समय प्राप्त हो, तो दोनों की पूर्ण तुष्टि हो जाती है। यदि पुरुष का वीर्यपात हो जाये, और उस समय स्त्री को आनन्द (Climax) की अनुभूति न हो, या उसकी अनुभूति में कुछ क्षणों या मिनटों की देर हो, तो स्त्री क सन्तुष्टि नहीं होती—उसे संभोग से सुख नहीं मिलता कारण, उसकी काम-चेष्टा तो जागरित हो जाती है, परन्तु पूरी नहीं हो पाती। स्त्री-पुरुष का आनन्दानुभव एक साथ, एक ही क्षण में, होना पूर्ण सन्तुष्टि के लिये आवश्यक है। परन्तु बहुधा पुरुष का आनन्दानुभ

(Climax) अपनी चरम सीमा पर शीघ्र पहुंच जाता है। उस समय तक स्त्री की काम चेष्टा पूरी तरह से जागरित भी नहीं हो पाती। यह स्थिति बहुत शोचनीय है। वास्तव में उत्तम संभोग का लक्षण तो यह है कि सम्भोग के समाप्ति पर पति-पत्नी को पूर्ण सन्तुष्टि हो जाये। संभोग में स्त्री की पूर्ण-सन्तुष्टि, उसकी मनोदशा और शारीरिक चेष्टाओं से सहज ही जानी जा सकती है। मूक-भाषा में पत्नी स्वयं ही सब बता देती है।

एक रहस्य

जब पुरुष में मैथुन की इच्छा उत्पन्न होती है, तब प्रोस्टेट-ग्रंथी Prostate glands) तथा अन्य ग्रंथियों से एक प्रकार का पतला, चिकना और कुछ श्वेत रस (Fluid) निकलता है, और इससे शिश्न-मुंड (Glans) तर हो जाता है। प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था इसलिये की है कि इससे शिश्न आसानी के साथ, बिना कष्ट के, योनि में प्रवेश कर सके। पुरुष की तरह स्त्रियों की योनि के समीप भी ग्रंथियाँ होती हैं। जब स्त्री संभोग के लिये इच्छा करती और मैथुन के लिये पूरी तरह तैयार हो जाती है, तब उसकी योनि से पतला, चिकना और सफेद द्रव्य निकलता है, जिससे योनि की दीवारें भी तर हो जाती हैं। योनि पहले से अधिक कोमल हो जाती है, और योनि की दीवारें भी विस्तृत हो जाती हैं। इस द्रव का निकलना स्वाभाविक है, और यह इस बात का लक्षण है कि वे संभोग के लिये तैयार हैं। कुछ लोगों की यह धारणा है कि संभोग से पूर्व श्वेत द्रव का निकलना रोग का लक्षण है, पर यह उनकी भूल है। अतः स्त्री की योनि से जब तक यह द्रव

प्रवाहित होकर भग को तर न करदे, तब तक कदापि मैथुन न करना चाहिये।

संभोग की समाप्ति

पति के शिश्न द्वारा वीर्यपात के साथ संभोग समाप्त हो जाता है। वीर्य किसको कहते हैं ? वीर्य एक प्रकार का चिकना कपूर जैसा सफेद और गाढ़ा द्रव होता है, जो पुरुष में ओज और कान्ति का कारण है। वीर्य-हीन पुरुष संसार में कोई काम नहीं कर सकता। यह वीर्य, जो योनि में गिरता है, दो करोड़ से पाँच करोड़ तक शुक्र-कीट—(Sperms) होते हैं। स्वस्थ पति के वीर्य का प्रत्येक शुक्र-कीट स्त्री के एक डिंब (Egg-cell) से मिल कर गर्भ-धारण की शक्ति रखता है। स्खलित वीर्य का रासायनिक विश्लेषण यह बतलाता है कि इस में अन्य द्रवों के सिवा केलशियम (Calcium) और फास्फोरिक-एसिड अधिक मात्रा में होते हैं, जो हमारे शरीर के लिये बहुमूल्य तत्व हैं। ये बहुमूल्य तत्व पति-पत्नी की जननेन्द्रियों में शोषित हो जाते हैं। कभी कभी गर्भाशय इस वीर्य के अधिक भाग को शोषित कर लेता है, और कभी वीर्य योनि में ही रहता है। योनि में या तो वह उसकी दीवारों में शोषित हो जाता है, अथवा उसके बाहर निकल जाता है। स्त्री को शिथिल होकर योनि को सिकोड़ कर शाँति से पड़े रहना चाहिये। इस प्रकार वीर्य के शोषण से स्त्री के अंगों को पुष्टि मिलती है। वीर्य एक बहुमूल्य तत्व है। स्त्री को चाहिये कि वह न तो इसे धोये, और न पोछे हो।

५

व्यवहार कैसा हो ?

करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर पड़त निशान॥

ठीक है—अभ्यास करने से जड़ बुद्धि भी सुबुद्धि और चतुर हो जाती है। जिस प्रकार रस्सी के आने-जाने—उसकी रगड़ से कुँवे का पत्थर भी घिस जाता है, उसी प्रकार मोटी बुद्धि अभ्यास करते रहने से एक न एक दिन ठीक हो जाती है। यदि स्त्री कर्कशा हो—लड़ने वाली हो, तो भी समझाने-बुझाने और उत्तम शिक्षा के प्रभाव से ढंग पर आ जाती है।

स्त्री को अपने पति की इच्छा के विरुद्ध कभी कोई काम नहीं करना चाहिये। पति से कोई बात छिपानी भी नहीं चाहिये। यदि पति किसी अनुचित काम से प्रसन्न होता हो, तो स्त्री का धर्म है कि नम्रता पूर्वक अपने पति को उस अनुचित काम की हानि दिखला कर समझा

दे। छल-कपट, क्रोध और अहंकार को छोड़ कर, नित्य पति को इच्छानुकूल आचरण करने तथा आलस्य का परित्याग कर पति की सेवा करते रहने से, स्त्री सहज ही अपने पति के हृदय को जीत लेती है। यदि घर में कोई नौकर हो तो ठीक ही है, नहीं भी हो तो स्वयं प्रातःकाल उठकर घर की सफाई करना, बर्तन माँजना, अपने हाथ से भोजन बनाकर पति को खिलाना सास-श्वसुर हों तो उनकी सेवा करना, बच्चों की देख-भाल और सफाई करना—इन सभी कामों को बड़ी तत्परता से करना ही अच्छी नारियों का लक्षण है। घर के किसी भी काम में आलस्य न कर के सदा प्रसन्न रहना चाहिये।

पुरुष में बहुधा क्रोध बहुत जल्दी आ जाता है, इसलिये स्त्रियों को चाहिये कि वे अपनी स्वाभाविक कोमलता से उसे दूर कर दें। यदि कभी किसी कारणवश पति रूठ भी जायें अथवा अप्रसन्न होकर कोई कड़ी बात ही कहदें, तो शान्ति के साथ सहर्ष उसे सहन कर लेना चाहिये। क्योंकि स्त्री तो अपने पति की अर्द्धाङ्गिनी ही है—फिर अपने ही अङ्ग से रुष्ट होने का क्या अभिप्राय? सहन-शीलता ही वास्तव में स्त्रियों का प्रधान गुण है। जिस स्त्री में यह गुण नहीं होता, वह कभी अपने पति और अन्य कुटुम्बियों को खुश नहीं रख सकती। पति की प्रसन्नता के बिना स्त्री का जीवन नीरस ही है। स्त्री को भार्या और सहधर्मिणी कहते हैं। प्रत्येक स्त्री को चाहिये कि वह अपने पति को सदा धर्म-कार्य की ओर प्रेरित करे। दूसरे की भलाई करना, दीन-दुःखियों के दुःख में शामिल होना तथा परोपकारी-जीवन व्यतीत करना ही प्रत्येक भली स्त्री का परम धर्म है। स्त्री का प्रत्येक कार्य स्वामी के

लिये—स्वामी के यश और प्रतिष्ठा के लिये होना चाहिये। जिस प्रकार शरीर स्वामी की सेवा के लिये है, उसी प्रकार स्त्री का शृंगार भी अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिये है। अच्छे गुण ही स्त्री के शृंगार हैं। किन्तु आजकल अच्छे कपड़े और गहने का स्त्री समाज को एक रोग-सा हो गया है। वे पति को प्रसन्न करने के लिये ऐसा नहीं करतीं, बल्कि लोगों को दिखलाने के लिये ही ऐसा करती हैं। प्राचीन-काल में भारत की स्त्रियाँ अपने पति की आज्ञा पाकर बढ़िया कपड़े और गहने पहनती थीं; और पति के विदेश चले जाने पर उन सब का त्याग कर बड़ी सादगी का जीवन व्यतीत करती थीं। प्रत्येक भद्र-पुरुष अपनी स्त्री को सुन्दर देखना चाहता है, यह एक साधारण बात है। इस से दोनों ही एक-दूसरे के शृंगार और सजावट का ध्यान रखते हैं। यदि प्रेम में कमी न हो तो वे एक-दूसरे को सुन्दरता बढ़ाने की अपने-आप ही चेष्टा करेंगे। इसलिये ऐसी दशा में पति से वस्त्राभूषण के लिये कहना या उसके लिये हठ करना बड़ी मूर्खता है। इससे पति के हृदय पर ठेस भी लग सकती है। क्योंकि अच्छा और प्रेमी पति तो स्वयं ही इसके लिए प्रयत्न करेगा। स्त्रियों का असली आभूषण है कोमलता, दया, उदारता, क्षमा, और नम्रता इत्यादि। जिसमें सब गुण न हों। वह उत्तम-से-उत्तम वस्त्राभूषण पहनने पर भी सुन्दर नहीं हो सकती। इसलिए गहने और कपड़े के लिये पति को तंग करना, रूठ जाना, स्वयं दुःख सहना और पति को दुःख देना उचित नहीं है। ये सब बातें गृह-कलह को बढ़ाने और दांपत्य-सुख में काँटे बोने वाली हैं

कुछ स्त्रियाँ अपने पति को दरिद्र समझ कर उनसे घृणा करने

लगती हैं—साधारण से साधारण बात पर भी वे अपने पति को कड़ी बातें सुनाने के लिये तत्पर हो जाती हैं, यह बहुत बुरी बात है। ऐसी स्त्रियां कभी भी सुखी नहीं रहतीं। स्त्रियों को सदा प्रसन्न रहना चाहिये। दरिद्र पति से घृणा करना भारी अपराध है। गोस्वामी श्री तुलसी जी ने लिखा है—

धीरज धर्म मित्र, अरु नारी। आपद-काल परखिये चारी॥

विपद् के समय पति का साथ देने वाली पतिव्रता स्त्रियाँ ही होती हैं। यह भूलना नहीं चाहिये कि मनुष्य की अवस्था सदा एक सी कभी नहीं रहती। सुख और दुःख कभी आता है और कभी चला जाता है। इसलिये हर अवस्था में मनुष्य को सन्तोष करना श्रेयस्कर है। विपत्ति के समय, जबकि पति का हृदय चिन्तातुर और मुर्झाया हुआ होता है—पत्नी का यह परम कर्त्तव्य है कि वह जैसे भी हो अपने पति को सान्त्वना देकर उत्साहित करती रहे। मनु जी ने लिखा है.— 'जो स्त्री अपने पति के दरिद्र होने या बीमार पड़ने पर उससे घृणा करती है, वह बारम्बार सूकरी, कुतिया या गृद्धिनी का जन्म धारण करती है। किसी भी अवस्था में पति का छोड़ना अथवा उसका तिरस्कार करना उचित नहीं। सुख में तो सभी साथ देते हैं, किन्तु सच्चा मित्र वही है जो दुःख में साथ दे। पति-पत्नी का सम्बन्ध ही संसार में एक ऐसा पवित्र और सुदृढ़ बन्धन युक्त सम्बंध है, कि जिसके आधार पर यह समस्त विश्व टिका हुआ है इस सम्बन्ध का दुरुपयोग करना पति-पत्नी दोनों के लिये न केवल घातक ही, वरंच महापाप भी है। स्त्री, पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी कही जाती है यदि अपना ही अङ्ग समय पर

साथ न दे तो यह कितने दुःख की बात है। हमारे धार्मिक-ग्रन्थों में और विशेषतया रामायण में किस सुन्दर ढंग से गृहस्थ-जीवन का चित्र खींच कर प्रत्येक के लिये सर्वोत्तम् शिक्षा दी गई है। यदि हम सब इसी आदर्श-पथ पर चलें तो कितना सुखमय हमारा जीवन हो जाये।

पारिवारिक सेवा

पति को सन्तुष्ट रखने तथा उसका सम्मान बढ़ाने के लिये स्त्री को परिवार से भी प्रेम करना चाहिये। क्योंकि वह स्त्री भी बुरी समझी जाती है जो केवल अपने पति की सेवा तो खूब करती है; किन्तु घर के अन्य लोगों को देख कर सदा जला करती है। ऐसा भाव रखने से एक तो स्त्रियों को दुःख सहना पड़ता है; क्योंकि घर के लोग भी उनके कठोर व्यवहार से खिंचे-खिंचे से रहने लगते हैं और दूसरे पति की भी बदनामी होने लगती है, क्योंकि लोग यह समझने लगते हैं कि शायद पति ही अपनी पत्नी को सिखा-पढ़ा कर कुटुंबियों के विरुद्ध कर देता है। इसी से ऋषियों ने पति-सेवा के साथ-साथ पारिवारिक सेवा करने की स्त्रियों को शिक्षा दी है। सास-श्वसुर को देवता-तुल्य पूजना चाहिये, क्योंकि वे उनके पति के भी पूज्य हैं। पर यह कैसी उलटी और दुःखपूर्ण बात है कि वर्तमान काल में स्त्रियाँ सास-श्वसुर अपने सुख का काँटा समझती हैं। पितृालय से आते ही पत्नी समस्त परिवार पर अपना शासन करना आरम्भ कर देती है। फल स्वरूप सास और वधु में परस्पर कलह का बीजरोपण हो जाता है और वह कलह ही घर की सब सुख-शान्ति को नष्ट कर देता है।

बुद्धिमानी तो यह है कि सास को घर में रख कर नई बहू उससे

पूरी-पूरी शिक्षा ले और उसी की आज्ञानुसार घर का प्रत्येक कार्य करे। ऐसा करने से, कोई कारण नहीं, कि सास भी अपने पुत्र-वधु को स्नेह और आदर की दृष्टि से न देखे। ऐसी सास बहुत कम होती हैं जो बिना कारण ही अपनी पुत्र वधु से अप्रसन्न रहें। यदि बहू में कोई दोष न हो और समझ-बूझ कर काम करने वाली हो, तो भला सास उस पर क्रोध क्यों करेगी। अपनी पुत्र-वधु के लिये सास के मन में कितना उत्साह रहता है; यह बात नई बहू को सास बनने पर ही ज्ञात हो सकती है। हम मानते हैं कि बहुधा ऐसा भी होती हैं कि बहू को अपना अपराध मालूम नहीं होता, और सास नाराज हो जाती हैं। प्रथम तो कुछ दिन तक बहू सहन करती रहती है, किन्तु बाद में वह बराबरी करने लगती है। इसका इलाज यही है, कि बहू शान्ति पूर्वक सास की बातों को सहन करके उसकी सेवा करती रहे—तभी सास पिघल जायेगी और उसे स्नेह की दृष्टि से देखना आरम्भ कर देगी। एक हाथ ताली कभी नहीं बजती। ठीक यही बात सास और बहू के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

यदि सास कठोर स्वभाव भी हो, तो उसकी सेवा करने से बहू उसे अपनी बना सकती है। मानलो, कि तुम्हारे माता-पिता का स्वभाव भी कठोर है और तुम्हें हर समय डाँटते-फटकारते रहते हैं—तो क्या तुम उनसे भी ममता करना छोड़ दोगी? शायद कभी नहीं। ऐसी ही बात सास-श्वसुर के साथ भी होनी चाहिये। मीठा बर्ताव करने से सब वश में हो जाते हैं।

सास-श्वसुर के अलावा घर के और लोगों के साथ भी प्रेम-भाव

रखना नितान्त आवश्यक है। देवर-जेठ, जेठानी, देवरानी, ननंद, भतीजे, भतीजी—सब को अपना समझ कर व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि परिवार के सभी लोग पति के अंश होते हैं, और पति है तुम्हारा आधा अंग—अपने ही अंग से कठोरता कैसी? वह गृहिणी धन्य है जो अपनी बुद्धिमानी से समस्त परिवार को प्रसन्न रख सके। श्वसुर को पूज्य भाव से देखे, देवर को छोटे भाई के समान, ननँद और जेठानी को अपनी बहन के समान समझे—तभी वह सब की प्रेमपात्री बन सकती है। यदि इन के लिए तुम्हें कभी कोई महान् कष्ट या अप्रिय बात भी सहनी पड़े, तो धैर्य कदापि न छोड़ो—प्रेम भाव बिल्कुल न हटाओ। वे चाहे जो करें—तुम अपने धर्म का पालन करती रहो। तुम्हारे सद्-गुणों के समाने इनके बुरे गुण छिप जायेंगे। वे सब स्वयं ही तुम्हारे उत्तम गुणों और मीठे बर्ताव से तुम्हारे अनुकूल बन जायेंगी और वैसा ही व्यवहार करने लगेंगी।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना॥

किन्तु घर में सुमति तभी रह सकती है, जब स्त्रियाँ ऊपर लिखी बातों पर चलें और उन्हीं के अनुकूल आचरण करें। चतुर गृहिणी बनने के लिये परिवार में प्रेम रखने की जरूरत है। प्रेम ही सुख का मूल है। घर के प्राणियों के प्रति प्रेम करना तथा अपने गुणों से उन्हें वश में रखना ही पारिवारिक सुख है। परस्पर प्रेम न होने से सुख-सम्पन्न गृहस्थी भी चौपट हो जाती है। कुछ स्त्रियों का ख़याल है कि

पति को लेकर अलग रहने ही से सुखी रह सकेंगी। पर, यह उनकी भूल है। परिवार जितना भी बड़ा हो, उतना ही अच्छा है। परस्पर प्रेम पूर्वक एक-साथ रहने से अनेक विघ्न-बाधा, कष्ट और कठिनाईयाँ दूर हो जाती हैं—एक से दूसरे को सहायता मिलती है। जरा-जरा-सी बातों पर रुष्ट हो जाने से पारि वारिक-एकता नष्ट हो जाती है। परिवार की एकता रहती है सहन शीलता और प्रेम से। यदि अभाग्यवश कोई ननँद या परिवार की दूसरी लड़की विधवा होकर तुम्हारे घर आकर रहने के लिये विवश हो गई हो, तो उसके साथ भी कभी भूल कर कठोर व्यवहार न करना चाहिये; क्योंकि वह तो स्वयं ही नसीब की मारी हुई तुम्हारी शरण में आई है—मरे हुये को और मारना या सताना कहाँ का न्याय है? दुःखियों का अभिशाप लेने की अपेक्षा तो सदा उनका प्रेम-भाजन बनना ही ठीक होगा। यदि किसी की निन्दा न करे, उसपर समान-प्रेम-भाव रक्खे, घर के काम धंधे में खींचा-तानी न करे, कोई बात न छिपाये, चोरी से कोई काम न करे, किसी को कड़ी बात न कहे, यदि कोई कुछ कह भी दे तो उसे जली-कटी न सुनाकर सहन कर ले, सदा उन्नति की ही बातें करे, मन में पवित्रता रक्खे, प्रसन्नचित्त रहे तो पारिवारिक-स्नेह अपने आप ही बढ़ता जायेगा। संसार में किसी की अवस्था सदा एक-सी नहीं रहती। गृहिणी को अपने धर्म का पालन सदा करते ही रहना चाहिये—उसी के आचार, विचार और व्यवहार पर सब-कुछ निर्भर है।

कुटुंबियों के पश्चात् नम्बर आता है पड़ोसियों का। उनके साथ भी नम्रता और शिष्टाचार पूर्ण व्यवहार होना चाहिये। पड़ोसियों के

बच्चे प्रायः खेलते हुए तुम्हारे घर आ जाते हैं; उन्हें प्यार करो और यदि सम्भव हो, तो कभी-कभी मिठाई वग़ैरा देकर उनका आदर-सत्कार करो। इससे पड़ोसियों के साथ तुम्हारी घनिष्टता और भी बढ़ जायेगी, और वे भी तुम्हारे बच्चों के साथ वैसा व्यवहार करेंगे। किसी से ईर्ष्या न करो, किसी को देख कर जलो नहीं। यदि तुम दूसरों के साथ ऐसा करोगे, तो दूसरे भी तुम्हारे साथ वैसा ही बर्ताव करेंगे।

६

अतिथि-सेवा

केवल पुरुष ही थे न वे, जिनका जगत को गर्व था।
गृह-देवियाँ भी थीं हमारी, देवियाँ ही सर्वथा॥
था अत्रि-अनुसिया-सदृश, गार्हस्थ्य दुर्लभ स्वर्ग में।
दाम्पत्य में वह सौख्य था, जो सौख्य था अपवर्ग में॥

अतिथि-सत्कार की महिमा बहुत बड़ी है। इससे बढ़ कर पुण्य दुनियाँ में और कोई है भी नहीं। अतिथि-सत्कार करने वालों के घर कभी-कभी स्वयं भगवान तक आ जाते हैं। हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू-शास्त्रों में अतिथि-सेवा की बड़ी महिमा लिखी है। यदि कोई अतिथि तुम्हारे घर पर आये, तो यथा-साध्य उसका आदर सत्कार करो—उसमें किसी बात की कमी न आने दो—तभी तुम्हारा गार्हस्थ्य-जीवन सुखी होगा। तभी तुम सच्ची गृहिणी बन सकोगी। आदर्श-गृहिणी का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह घर आये हुए अतिथि की सेवा करने में कोई बात

उठा न रक्खे। पहले उसे भोजन कराये, पीछे अपने पति और घर के अन्य लोगों को।

द्वार पर आया हुआ अतिथि नारायण स्वरूप होता है—इसकी सेवा-सुश्रूषा करने में तो न मन दुःखी होना चाहिये और न किसी तरह का संकोच ही इस विषय में करना चाहिये। अभ्यागत का सत्कार अपने घर वालों से भी बढ़कर होना चाहिये। आत्मीय-स्वजन और कुटुम्बी तो सब दिन के लिये हैं; किन्तु आया हुआ अतिथि रोज-रोज नहीं आता। शास्त्रकारों का कहना है कि—"अतिथि वह है जो रात भर विश्राम करने के लिये बिना बुलाये ही गृहस्थी के घर आजाये। अतिथि अर्थात् 'बिना तिथि का' यानी एक गृहस्थ के घर दो तिथि या दो दिन न रहने के कारण ही वह अतिथि कहलाता है।

शास्त्रों में अतिथि-सेवा से बढ़कर पुण्य का काम दूसरा कोई नहीं माना गया है। ठीक भी है—जो अतिथि एक दिन—केवल एक रात भी तुम्हारे घर विश्राम करने आया है, उसका आदर-सत्कार करने में हम चूकें भी तो क्यों? वह अतिथि तो हमारे लिये भगवान है—साक्षात् नारायण स्वरूप! भला ऐसा सुयोग कब-कब किसी के हाथ आता है? क्यों न हम उसकी सेवा-सुश्रूषा करके सर्वोत्तम पुण्य को संचित करें? जिस घर से अतिथि कष्ट या दुखी होकर लौट जाता है, उस घर का वह मानों सब पुण्य-फल लेकर उसे बदले में अपना पाप दे जाता है। देखिये, विष्णुपुराण में इसके लिये क्या लिखा है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति॥

—: विष्णुपुराण।

यदि अभाग्यवश अतिथि को देने के लिये तुम्हारे पास कुछ भोजन न हो, तो यह कदापि न समझो कि तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं—सत्कार कैसे किया जावे! सत्कार कुछ देने-लेने से नहीं, वह तो हृदय से किया जाता है। प्रेम पूर्वक मधुर भाषण करने तथा एक लोटा शीतल जल पिला देने से भी तुम्हारा कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। इसके लिये यह आवश्यक नहीं कि मेवा मिष्ठान अथवा छत्तीस व्यञ्जन जब तक न हों, तब तक अतिथि-सत्कार करना ही व्यर्थ है। ऐसा वे ही लोग करते हैं, जो या तो शेखी में भरे होने के दूसरों पर अपना प्रभाव डालना चाहते हों, अथवा उत्तमोत्तम भोजन की आड़ में वे अपना ही उल्लू सीधा करना चाहते हों।

अतिथि की सेवा करने में किसी प्रकार का दुःख नहीं मानना चाहिये। यह तो मर्जी का सौदा है—जिसमें जितनी सामर्थ्य है, उसी के अनुसार काम करना चाहिये। न तो इसके लिये किसी से ऋण करने की आवश्यकता है, और न किसी के आगे हाथ पसार कर अपने को छोटा साबित करने की ही जरूरत। सत्कार उन्हीं सब वस्तुओं से करो, जो तुम्हारे घर में पहले से मौजूद हैं—किसी से माँगकर अतिथि-सत्कार करने से न तो तुम्हें हार्दिक-सुख ही प्राप्त हो सकेगा, और न उसका विशेष कुछ महात्म्य ही है। यदि झिझक और दुःख के साथ किसी को तुम अमृत भी दोगी, तो वह अमृत न रह कर हलाहल विष बन जायेगा।

यहाँ हम एक पौराणिक दृष्टान्त देते हैं, जिससे तुम्हें अतिथि-सत्कार की महिमा भली भाँति समझ में आजावे।

कहते हैं एक बार महाराज युधिष्ठिर ने इसी विषय पर भीष्म पितामह जी से प्रश्न किया, तो उन्होंने एक कपोत और कपोती की कथा सुनाते हुए कहा,—"हे राजन् ! एक वृक्ष की डाल पर एक छोटा-सा घोंसला था, जिस में एक बहुत पुराना कबूतर अपने अण्डे-बच्चे और कबूतरी के साथ रहता था। एक दिन उस कपोत की स्त्री कपोती आहार के लिये भोर ही अपने घोंसले से निकली और सायं-पर्यन्त न लौटी। सूर्यास्त हो गया और अंधकार भी धीरे-धीरे बढ़ता हुआ चारों ओर फैल गया; पर वह कपोती ही लौटकर अपने घोंसले में न आई। इधर ज्यों-ज्यों विलम्ब होता जाता, त्यों-त्यों उस कपोत की चिन्ता भी बढ़ती जाती—यहाँ तक कि स्त्री के वियोग में उस कपोत को सारा संसार ही नीरस और सूना दिखाई देने लगा। बच्चों को खिला-पिला और सुला कर वह कपोत घोंसले के द्वार पर बैठा हुआ तमाम रात अपनी प्रियतमा की बाट जोहता रहा, पर वह जो गई सो ऐसी गई कि फिर लौट कर ही नहीं आई। पत्नी-विछोह में छटपटाता हुआ कपोत डाल पर बैठा-बैठा विलाप कर कहने लगा,—'हा, प्रिये! तू मुझे छोड़ कर आज कहाँ चली गई? तेरे बच्चे तेरे बिना रोते-रोते सो गये, तेरा पति तेरे वियोग में तड़प तड़प कर अपने प्राण दे रहा है—तू फिर भी नहीं आती! हाय, आज न जाने तुझे क्या हो गया? तू ऐसी निष्ठुर तो कभी भी न थी। प्रिये—प्रियतमे! कहाँ है तू? आ, शीघ्र आ! क्या नहीं जानती तू कि तेरे पति का हृदय कितना कोमल है? क्या नहीं जानती तू, कि उस में तेरे लिये कितना प्यार—कैसा अगाध प्रेम भरा हुआ है? हाय, हाय, जो बिना मुझे स्नान कराये—कभी स्नान

नहीं करती थी, जो बिना खिलाये—कभी खाती नहीं थी; मेरे दुःख मे :दुख और सुख में जो सुख समझती थी; मेरे विदेश चले जाने पर जो सदा व्याकुल रहा करती और मेरे क्रोध करने पर बड़ी नम्रता से जो मुझे शान्त किया करती—हाय हाय, वह प्राणाधिका पतिव्रता न जाने मुझे छोड़ कर आज कहाँ चली गई ? तू इतनी कठोर कैसे होगई प्रिये ? क्या तेरे मनमें अब अपने पति और बच्चों की ममता भी नहीं रह गई ?"

भीष्म पितामह जी बोले,—"हे युधिष्ठिर ! उधर जबकि कपोत अपनी स्त्री के लिये नाना प्रकार से विलाप कर रहा था, इधर कपोती आहार की तलाश में उड़ती हुई एक दूसर ही वन में जा पहुँची। उसी समय एक भयंकर आँधी उठी और बड़े जोर की मुसलाधार वृष्टि होने लगी। समस्त वन-प्रान्त जल से भर उठा और उस कपोती को एक घने वृक्ष की डाल पर बैठ कर अपनी रक्षा करनी पड़ी। इतने में एक विचित्र आकृति का बहेलिया शीत से काँपता हुआ उसी वृक्ष के नीचे आकर एक ऊँचे टीले पर खड़ा होगया। वर्षा के कारण वन के सारे जीव जन्तु घबराये हुए जिधर तिधर घूमने लगे। वायु के झोंके पर झोंके आरहे थे, बड़े-बड़े वृक्ष जड़ से उखड़ कर दूर जा गिरते थे सैकड़ों पक्षी घोंसले उजड़ जाने के कारण बेघर होकर प्रचण्ड वायु में इधर-उधर फड़फड़ाते हुए फिर रहे थे। शीत और वायु का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि वह कपोती अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी। बहेलिये की दृष्टि पड़ते ही उसने उस कपोती को उठा कर अपने पिंजड़े में रख लिया। थोड़ी देर बाद; वर्षा बंद होने पर, बहेलिया उस कपोती को लिये हुए वहाँ से चल दिया और दैवयोग से दूसरे वन में

पहुँच कर वह उसी वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगा, जिस वृक्ष पर वह कपोत बैठा हुआ अपनी स्त्री के वियोग में विलाप कर रहा था।"

"बहेलिये के पिंजड़े में बंद कपोती अब होश में आचुकी थी और चुपचाप बैठी हुई प्रेम पूर्वक अपने पति का विलाप सुन रही थी। वह मन ही मन सोचने लगी—अहा! मैं कैसी भाग्यवती हूँ, कि कोई गुण न होने पर भी मेरे पति मुझे कितना प्यार करते हैं! मेरे आने में विलम्ब होता हुआ देख कर ही वे विरह-वेदना से अधीर होकर कितना विलाप कर रहे हैं। अहा, जिस स्त्री का पति उससे प्रसन्न और सन्तुष्ट रहता है, उससे बढ़ कर भाग्यशालिनी भला और कौन हो सकती है। पति ही स्त्री के देवता हैं, भगवान हैं और हैं उसके सर्वस्व। इस बात के साक्षी स्वयं अग्नि देव हैं।

"इस प्रकार मन-ही-मन अपने सौभाग्य की सराहना करती हुई वह कपोती अपने पति को सम्बोधित करके बोली—स्वामिन्! मैं इस बहेलिये की कैद में हूँ—आप मेरे लिए तनिक भी चिन्ता न करें। मेरी एक इच्छा है; आशा है आप इसे अवश्य पूरी करेंगे। देखिये, यह भूखा प्यासा और शीत से पीड़ित बहेलिया आपकी शरण आया है। इसे अतिथि समझ कर आप इसका सत्कार कीजिये। गो, ब्राह्मण, गर्भवती स्त्री और शरण में आये हुए प्राणी की रक्षा करना परम-धर्म है। जो गृहस्थ अपनी शक्ति के अनुसार धर्म-कार्य करता है, वह बड़ा ही पुण्यात्मा है। प्राणनाथ, आप मेरे लिये जरा भी चिन्ता न करें—मुझे इस अतिथि के लिये प्राणोत्सर्ग करने दीजिये, यही मेरी आपसे प्रार्थना है।"

"कपोत अपनी स्त्री के मुख से ऐसे वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और वह ऐसी धर्मपरायणा स्त्री पाने के कारण मन ही मन अपने भाग्य की सराहना करने लगा। उसने बहेलिये को सम्बोधित करके पूछा,—"कहिये, महाशय! मैं आपकी क्या सेवा करूँ? अहोभाग्य मेरे, जो आज आपने मेरी कुटिया पर आने का कष्ट किया। यद्यपि मेरी स्त्री इस समय आपकी कैद में है, तथापि ऐसे समय, जबकि आप स्वयं ही अपनी इच्छा से मेरे घर पर आये हैं, मैं कदापि आपको किसी तरह का कष्ट न होने दूँगा। घर पर आया हुआ शत्रु भी, नारायण स्वरूप होने के कारण, पूजने के योग्य है। अतः मैं बारम्बार आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि निःसंकोच भाव से आप बोल दीजिये, मैं क्या सेवा करूँ आपकी?"

"कपोत की बातों से सन्तुष्ट होकर बहेलिय ने कहा—भाई, देख रहे हो—शीत के कारण मेरा बुरा हाल हो रहा है, जान पड़ता है देह का समस्त रक्त गम कर बर्फ हो गया है। यदि तुम दया करके थोड़ी सी अग्नि का प्रबन्ध कर सकते तो बहुत अच्छा होता।"

"सुनते ही कपोत अपने घोंसले से निकला और एक जगह से थोड़ी-सी आग लाकर उसने बहेलिये के आगे रख दी। फिर कुछ सूखे पत्ते और तृण बटोर कर उसने पंखों से हवा देकर वह अग्नि प्रज्वलित कर दी। आँच का सहारा पाकर वह बहेलिया बहुत खुश हुआ और उस कपोत से बोला,—'भाई, शीत तो अब दूर होगया, किन्तु भूख बड़े ज़ोर की लग रही है।' कपोत बोला,—'भगवन्, यह तो आप जानते ही हैं, कि मैं एक साधारण-सा पक्षी हूँ—मेरे पास सिवाय कुछ

दाने अन्न और सूखी घास के इस समय और कुछ भी न होगा। पर, तो भी मैं आपको निराश न करूँगा। आप मेरे अतिथि हैं—जैसे भी होगा, मैं आपके भोजन का प्रबन्ध अवश्य करूँगा।

"इतना कह कर कपोत ने अपनी स्त्री की ओर देखा। स्त्री भी उसी की ओर देख रही थी। कपोत ने कपोती से कहा—'प्रिये, अतिथि सत्कार के लिए हमारे पास सिवाय अपने मांस के और कुछ नहीं है। अतः मैं इस आग में कूद कर अपना माँस भूंजता हूँ जब यह पक जाए तो तुम अतिथि को खिला देना।' कपोती बोली,—'नहीं नाथ, मुझे आग में कूद कर अपना माँस भूंजने दो!' कपोत ने कहा—'तुम्हारे मर जाने से फिर बच्चों का लालन-पालन कौन करेगा? मुझे ही आग में कूदने दो।' यह कह कर वह कपोत आग में कूद पड़ा और एक क्षण के भीतर ही जल-भुनकर राख हो गई। उसका अपूर्व आत्मोत्सर्ग देख कर बहेलिया का कठोर हृदय भी पिघल गया। वह मन-ही-मन पश्चाताप करने लगा—हाय, मैं भी कैसा निष्ठुर और निर्दयी हूं, जो मेरे कारण इस धर्मात्मा कपोत को अपना शरीर आग में जलाना पड़ा। अहा, यह कपोत पक्षी होकर भी कितना पुण्य संचय कर गया है और मैं एक मनुष्य होकर भी रोज-रोज कितना अधर्म कमा रहा हूं।"

"यह कह कर उस वधिक ने पिंजड़े का द्वार खोल कर कपोती को बाहर निकाल दिया और पिंजड़ा तथा कम्पा आदि फेंक कर वहाँ से चलता बना। इधर जब वह कपोती अकेली रह गई तो वह अपने पति के वियोग में नाना प्रकार से विलाप करके रोने लगी। अपने पति के गुणों की याद करके वह कहने लगी—नाथ! आप मुझे अकेली ही छोड़

कर क्यों चले गये ? आपने जीवन भर एक भी काम ऐसा नहीं किया था, जो मुझे अप्रिय अथवा अरुचिकर हो। आपके साथ मुझे जो आनन्द मिला, वह सहज ही नहीं भूला जा सकता। हाय, अब वह आनन्द आपके बिना मेरे लिये स्वप्नवत् हो गया। माता-पिता, भाई-बहन और बेटा-बेटी से मिलने वाले सुख की तो सीमा भी है; किन्तु पतिद्वारा प्राप्त होने वाले सुख की कोई सीमा ही नहीं। पति के समान सुख देने वाला संसार में और कोई नहीं है—स्त्रियों का एक मात्र सहारा पति ही है। जिस स्त्री का पति नहीं, उसका संसार में और कोई नहीं। हे प्राणाधार हे दुःखी जीवन के सहारे !! अब तुम्हारे बिना जी कर क्या करूँगी ? नाथ, मुझे अपने चरणों में ही रहने दो !"

"यह कह कर वह कपोती भी अपने पति का स्मरण करती हुई प्रज्वलित अग्नि में कूद पड़ी। पश्चात् देखा गया, कि वह कपोत सुन्दर शरीर धारण कर एक उत्तम विमान पर बैठा हुआ देव लोक जाने को तैयार है और सब सत्कृतियाँ उसकी पूजा कर रही हैं। उत्तमोत्तम वस्त्र-भूषण से सुसज्जित सैकड़ों स्वर्गवासी उसका स्वागत करने के लिये तैयार खड़े हैं। थोड़ी देर बाद वह कपोती भी सुन्दर-सुन्दर वस्त्रा-भूषण पहिने हुए अपने पति के पास जा पहुंची और विमान में चढ़ कर वह भी अपने पतिदेव के साथ सीधी स्वर्गलोक चली गई। वहाँ उन दोनों को यथेष्ट सम्मान प्राप्त हुआ।"

देखिये, अतिथि-सेवा का कितना बड़ा महात्म है। धर्मात्मा कपोत और उसकी स्त्री ने, एक ऐसे व्यक्ति को जो वास्तव में उनका ही नहीं उनकी समस्त जाति का भी शत्रु था—घर पर आया हुआ अतिथि

जान कर उसकी कैसी सेवा की, और न केवल सेवा ही, वल्कि उसके भोजन के लिये कपोत ने स्वयं आग में कूद कर अपने प्राण भी विसर्जन कर दिये। अहा, धन्य हैं वह कपोत और कपोती! धन्य हैं वे लोग, जो प्राण देकर भी खुशी-खुशी अतिथि का सत्कार करने से नहीं चूकते!! धन्य है वे गृहस्थ, जिनके घर पर सदा अतिथि-सत्कार होता रहता है!!! धन्य हैं वे गृहिणी, जो घर आये हुए अतिथि को नारायण स्वरूप मान कर उनकी पूजा करती हैं वास्तव में हमारा हिन्दू-धर्म जहाँ और सब बातों में श्रेष्ठ हैं, वहाँ अतिथि-सेवा की महिमा भी इस धर्म में सर्वोत्व मानी गई। ऊपर के उदाहरण से हमारी पाठिकाओं को अतिथि की सेवा का महात्व भली भाँति मालूम हो गया होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने घर आये हुए आदमी की सेवा करने से बढ़कर पुण्य का काम दूसरा नहीं। अतिथि-सेवा से परमार्थ तो सुधारता ही है, इहलौकिक लाभ भी कम नही होता।

जिस गृहस्थ के घर अतिथियों की सेवा होती है, वहाँ साधू-महात्मा बराबर आते रहते हैं। ऐसी दशा में उनके सत्सङ्ग से गृहस्थ का घर अच्छे अच्छे उपदेशों का लाभ होता रहता है। लोक में यश फैलता है और सब लोग ऐसे गृहस्थ का आदर करते हैं। यह सत्य है कि अतिथि सेवा करना प्रत्येक गृहस्थ का परम धर्म है; किन्तु इसमें भी सावधान और सतर्क रहने की आवश्यकता है, क्योंकि आज-कल वह समय नहीं है कि अनायास किसी का विश्वास कर लिया जावे। पाखण्डियों, चोरों और उचक्कों की चारों ओर धूम मच रही है। इन लोगों से सावधान रहने की सख्त ज़रूरत है। अच्छा हो यदि हमारी बहने देश, काल और स्थित को देखकर उसके अनुसार कार्य करें। केवल गृहणी बन जाने से कोई लाभ नहीं—इसके लिए उन्हें प्रतिपत्त बुद्धि- विवेक और दूरदर्शिता से काम लेना होगा।

७

दिनचर्य्या

दिनचर्य्या ऐसी हो बहनो जो शुभ नाम करे।
उठकर भोर ही प्रार्थना करके, घरका काम करे॥
नित्यप्रति जो नारी अपने, पति की सेवा करे।
जीवन सफल हो यदि गृहिणी, कार्य निष्काम करे॥

प्रतिदिन सूर्योदय के पहले उठकर अपने इष्टदेव की आराधना करनी चाहिये। सच्चे मन से उस परमपिता परमेश्वर का स्मरण करती हुयी प्रार्थना करे कि—"हे प्रभो! हे विश्व-नियन्ता!! हे सर्वव्यापक स्वामी!!! इस संसार में मेरा कुछ भी नहीं है—सब कुछ आपका है। आप ही हमारे स्वामी हैं। हे भगवान! ऐसी दया करो, कि हमारा तमाम दिन हँसी-खुशी और सुख मे व्यतीत हो। हमें साधु, महात्मा, गो-ब्राह्मण और अभ्यागत व शरणागत व्यक्तियों की सेवा करने का अवसर मिले तथा सन्त, महापुरुषों और संसार-विरक्त संन्यासियों का उपदेशामृत पान करने का सुयोग प्राप्त हो। हे भगवान्!

हे विश्वेश्वर !! हमारे द्वारा किसी को किसी तरह का कष्ट न पहुँचे। हम प्रतिक्षण, प्रति समय दूसरों की सेवा करने में ही खुश रहेंगी।

इस प्रकार उस परमपिता परमेश्वर की प्रार्थना करने के बाद अत्यन्त नम्रता एवं श्रद्धा-भक्ति पूर्वक अपने पति के चरणों पर माथा टेक कर प्रणाम करे। पति का दर्शन कर चुकने के बाद, शौचादि से निवृत होने के लिये शयनागार से बाहर निकले, और हाथ-मुख धोकर अपने घर की भली भाँति सफाई करे। याद रक्खो, घर की सफाई से ही घर में लक्ष्मी का वास होता है। झाड़ू-बुहारी देना, बर्तन-माँजना, कपड़े धोना, खाना बनाना इत्यादि सभी काम यदि अपने हाथ से किए जावें, तो इससे न केवल तुम्हारे पैसों की बचत होगी, बल्कि साथ ही तुम्हारी प्रत्येक वस्तु की रक्षा भी भली भाँति हो सकेगी। क्योंकि प्रायः देखा गया कि नौकर तो बिल्कुल नौकर ही होता है—ऐसे नौकर बहुत कम होते हैं, जो सच्चे मन से अपने स्वामी का काम करें और उनकी हर चीज को देख भाल कर रक्खें—उन्हें टूटने-फूटने अथवा नष्ट होने से बचावें। नौकर पर एकदम भरोसा करलेना भी भारी भूल है।

हमारी बहनों में एक-दूसरे की निन्दा करने तथा दूसरों के घर की आलोचनाएँ करने की बहुत बुरी आदत है। जैसे भी हो, इस आदत से अपने-आप को छुड़ाने की चेष्टा अवश्य करनी चाहिए। याद रक्खो जो दूसरों की निन्दा और बुराई करते हैं—एक तो उनका हृदय कभी साफ नहीं रह सकता, दूसरे अन्य लोग भी उनकी बुराई उसी प्रकार दूसरों से करने लगते हैं और जब दोनों ओर से ऐसा होना आरम्भ हो

जाता है—तब उनमें परस्पर मतभेद और मन-मुटाव की एक गहरी खाई बीच में पड़ जाती है, जो कुछ ही समय बाद भयंकर शत्रुता का रूप धारण कर लेती है। गृहस्थी के लिये ऐसा होना बहुत अमङ्गल-कारी है। अतः हम अपनी बहनों को ऐसे स्वभाव का परित्याग करने के लिए जोर देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। उन्हें व्यर्थ की बातों में न पड़ कर सदैव अपने कामों में ही लगा रहना चाहिये। यदि घर में और कोई काम उनके करने को न रह गया हो, तो चर्खा लेकर ही बैठ जायें।

स्त्रियों को अधिक वार्तालाप भी नहीं करना चाहिये। यदि कोई भूल हो जाये, तो उसके लिये ईश्वर से क्षमा माँगलेनी चाहिए, और आगे के लिये प्रतिज्ञा करलें कि अब कभी ऐसा न होगा। सब काम नियमानुसार ठीक समय पर होना चाहिये। आलस्य कदापि न करना चाहिये। अधिक रात तक, बिना किसी खास प्रयोजन के, जागना भी ठीक नहीं। सोने से पहले एक बार घर की देखभाल कर लेनी जरूरी है। घर की सब चीजें यथा-स्थान रखकर खिड़कियें और दरवाजें भली प्रकार बन्द करदें। घर का हिसाब-किताब यदि तुम स्वयं लिखती हो तो सोने से पहले उसे लिख डालो। आज का काम कल पर छोड़ना ठीक नहीं। ऐसा होने से एक तो भूल होने की संभावना है; दूसरें काम रुकजाने से उसका भार बढ़ जाता है।

घर की देख-रेख करना स्त्री का मुख्य कर्त्तव्य है। बहुत सी स्त्रियाँ अपने घर का काम करने में भी संकोच करती हैं। यह उनकी भूल है। अपना काम करने में लाज किस बात की? जो स्त्री अपने घर का

काम अपने हाथ से न करके नौकरों या दूसरे लोगों के भरोसे पर छोड़ देती हैं, उसे बाद में हानि उठानी पड़ती है। नौकर होते हुए भी उस पर स्वयं नियन्त्रण रखना चाहिये। धनी परिवार की स्त्रियों के लिये भी यह नितान्त आवश्यक है कि वे कुछ न कुछ अपने घर का काम स्वयं करती रहें। शारीरिक परिश्रम न करने से स्वास्थ्य खराब हो जाने का भी भय रहता है। स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये व्यायाम करना जरूरी है।

स्त्रियों को चाहिये कि खाने-पीने की प्रत्येक वस्तु को ढँक कर रक्खे। सब चीजों को रखने के लिये अलग-अलग निश्चित स्थान होना चाहिये। जो चीज जहाँ रखी जाये, उसे वहाँ से उठाने के बाद काम करके पुनः वहीं रख देना चाहिये। ऐसा करने से यदि तुम अंधेरे में भी कोई चीज लेना चाहोगी, तो वह बिना कष्ट और विलम्ब के तुम्हें मिल जायेगी। नमक, हल्दी, मिर्च, मसाला—प्रत्येक वस्तु डब्बों में सुरक्षित रखी होनी चाहिये। दाल वगैरा सब टीन के डिब्बों में रक्खें गेहूँ, आटा या चावल के लिये बड़े-बड़े टीन के गोल डरम हों तो अच्छा है—यदि न हों तो सुविधानुसार ऐसा ही कोई प्रबंध करलें, जिससे तुम्हारे घरका अनाज इधर-उधर बिखरता हुआ न फिरे अथवा मूसरचन्द जी उसे खा-खा कर व्यर्थ अपना वजन न बढ़ायें। पका हुआ भोजन, फल इत्यादि रखने के लिये अगर एक जालीदार अलमारी बनवा सकें तो ठीक ही है—नहीं तो ऐसा ही कोई प्रबंध करलें जिससे खाद्य-पदार्थ सुरक्षित भी रहे और उस में ताजी हवा भी लगती रहे। भोजन का कमरा यदि अलग हो तो बहुत ही अच्छा, न हो तो उसके लिये दुःखित

होने की भी जरूरत नहीं—पर, सफाई रखना हर अवस्था में बहुत जरूरी है। सब वस्तुएँ अलग-अलग करीने से सजाकर रखने से एक तो देखने में सुन्दर लगती हैं, दूसरे कोई चीज की जरूरत पड़ने पर ढूँढनी नहीं पड़ती। कपड़े यों तो बक्सों में रक्खे ही जाते हैं, किन्तु जो वस्त्र नित्य प्रति काम में आते हों, उन्हें रखने के लिये एक अलमारी होनी जरूरी है। बक्सों को बार बार खोलने से उनके खराब हो जाने का डर रहता है; किन्तु अलमारी रहने से कई तरह की सुविधाएँ हो जाती हैं। एक चीज यहाँ, दूसरी वहाँ और तीसरी कहाँ—यह सब काम फूहड़ नारियों के हैं। इससे न केवल देखने वाले उनकी बदनामी ही करेंगे, बल्कि स्वयं उन्हें भी कार्य करने में असुविधा होगी। बेतर्तीबी से चीजें रखने से व्यर्थ ही इधर-उधर सारे कमरे के चक्कर काटने पड़ते हैं और अधिकांश समय यों ही खराब हो जाता है। इसलिये कमसे कम दो बातों का खयाल रखना बहुत जरूरी है, एक तो यह कि सब वस्तुएं निश्चित स्थान पर रक्खी जायें—दूसरे यह कि एक मेल की सब चीजें एक जगह, जहाँ उनकी जरूरत हो रक्खें। ऐसा करने से काम भी जल्दी होता है, और मौके पर चीज खोजने की जरूरत नहीं पड़ती।

विद्याभाव के कारण आजकल बहुधा स्त्रियों में अनेक त्रुटियें देखी जाती हैं। उन्हें यह भी मालूम नहीं कि कब क्या करना चाहिये। स्त्रियों को चाहिये कि वे प्रत्येक काम हर्ष पूर्वक चित्त लगा कर करें। हर काम में सफाई रखना बहुत जरूरी है। घर में क्या है क्या नहीं है, इसका सदा ध्यान रखना चाहिये। जो चीज खत्म हो जाये, उसका एक

दो दिन पहले ही प्रबंध करना ठीक है, जिससे जरुरत पड़ने पर वह चीज तुरन्त मिल जाये। निम्नांकित बातों की जानकारी रखना एक कुशल गृहिणी के लिये नितांत आवश्यक है।

१—शाक-सब्जी विनारना, धोना तथा दाल-चावल आदिका पछो-रना, बीनना इत्यादि। पंचाङ्ग के अनुसार तिथि, तारीख, महीना, संवत् आदिका ज्ञान—पत्रादि लिखना व पढ़ना इत्यादि। २—घर के खर्च का ठीक-ठीक हिसाब रखना। भोजन बनाने की विधि जानना। अनेक प्रकार का पकवान, नमकीन व मिष्टान्न तैयार करना। किस अतिथि के लिये कैसा भोजन बनाना चाहिये, इसका ज्ञान होना जरूरी है। कितने मनुष्यों के लिये कितनी मात्रा में भोजन तैयार करना चाहिये, इसका अन्दाज होना जरुरी है। समय-समय पर भोजन की चाजों में परिवर्तन करते रहना चाहिये; क्योंकि एक दाल या एक तर-कारी रोज-रोज खाने से उसमें अरुचि हो जाति है। ३—सफर के लिये क्या चीज अधिक उपयुक्त होगी, इसका भी ज्ञान होना चाहिये। आचार, जेलो (मुरब्बा) व पापड़ आ.द बनाने की विधि जानना। देश में किस प्रान्त के लोग किस तरह का भोजन पसन्द करते हैं, यह बात जानना और उन्हीं की इच्छानुसार भोजन बनाने की रीति जानना इत्यादि। ४—कपड़ा काटना और सीना, कशीदे काढ़ना; स्वेटर, ब न-यान व मौजे वगैरा बुनना। काम में आने वाली चीजों के अच्छे और बुरेपन का ज्ञान रखना तथा किस वस्तु का मूल्य क्या है, इसका अन्दाज होना। बाजार करते समय चीजों का भाव-ताव करना इत्यादि। ५—साधारण रोगों की दवाइयाँ जानना—विशेषतया बच्चों के रोगों

को पहचानना और उसीके अनुसार उपचार करना। शिक्षाप्रद पौराणिक कहानियों का स्मरण रखना और उन्हें बच्चों का मन बहलाने के समय सुन्दर ढंगों से कहना। पूजा-पाठ और हवनादि सामग्रियों का ज्ञान हो ऋषि पंचमी, दीपावली, विजय-दशमी आदि व्रत-महोत्सवों की पूजन-तिथि और व्रतादि के दिनों की विधि जानना। ६—घर की सफाई रखना। धोबी को कपड़े लिख कर देना। ७—घर का भाड़ा यदि देना हो, तो उसकी ठीक तिथि याद रखें। बच्चों की पढ़ाई और स्कूल की फीस देने का खयाल रखें।

इन सब बातों की शिक्षा कन्याओं को माता पिता के घर ही मिलनी चाहिये; जिससे पति के घर पहुँचते ही वे गृहस्थी का सब भार अनायास ही सम्भाल सकें। किसी भी काम का अभ्यास शुरू से ही करते रहने पर बाद में किसी तरह की कठिनाई नहीं होती। पुरानी स्त्रियाँ घर के कामों की पूरी-पूरी जानकारी रखती थीं। कुटुंब के सब प्राणियों की प्रकृति जानतीं और उसी के अनुसार उनके साथ व्यवहार करतीं थीं। सब को ठीक समय पर भोजन कराना; किसी को अप्रसन्न न करना; यह कुशल गृहिणी का मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये। किस को कौन चीज अच्छी लगती है, कौन चीज बुरी लगती है, किसी को किसी तरह का कोई कष्ट तो नहीं है—यदि है तो यह बात वे मुख देख कर ही जान जाती थीं और तब बड़े प्रेम और आदर से समझा-बुझा कर वे उसे दूर करने की चेष्टा किया करती थीं। अपनी सन्तान को पढ़ाने-लिखाने का प्रबंध करना, शिशु-पालन की उचित व्यवस्था करना; जिन बातों का बच्चों के दिल पर बुरा असर पड़ता है, उन्हें कभी भूल कर

भी न करना—उनके चरित्र-निर्माण में पूरी सावधानी से काम लेना चाहिये।

प्रायःदेखा गया है, कि माता-पिता की असावधानी के कारण बच्चे शुरू से ही खराब हो जाते हैं। कामोत्तेजित स्त्री-पुरुष अपने बच्चों के सामने ही प्रेमालाप करना आरम्भ कर देते हैं। वे समझते हैं कि कि बच्चे अज्ञान या छोटे होने के कारण क्या समझेंगे उनकी बातों को। पर, यह उनकी बहुत भारी भूल है। माता-पिता को यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि बच्चा दो-ढाई साल बरस की उम्र से ही सब कुछ देखने-भालने और समझने लगता है। प्रतिदिन जो बात उसके सामने की जायेगी—कोई कारण नहीं कि उसका प्रभाव उस बच्चे के दिल पर न पड़े और फिर वह भी उसी तरह की क्रिया अपने हमजोलियों में न करने लगे। बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, त्यों-त्यों उसकी बुद्धि का भी विकास होता जाता है—उसे नई चीजों को देख कर ग्रहण करने की इच्छा होती है। शिशु की आँखें बड़े चाव से नई-नई बातों को देखती हैं और और उसका कोमल-हृदय प्रत्येक ऐसी बात को, जो उसके लिये अभी तक बिल्कुल नई है—तुरन्त ग्रहण करने को लालायित हो उठता है। ऐसी दशा में क्या यह उचित नहीं कि पति-पत्नी प्रेमाचार आदि कार्यों में खूब सावधानी बरतें ?

लक्ष्मी-चरित्र में लिखा है—"जो स्त्री नित्य आँवले से सिर मलती है, घर को गोबर से लीप कर साफ रखती है, श्वेत-वस्त्र धारण कर सदा विकसित-वदन रहा करती है तथा अपने घर की चीजों को सफाई से सजाकर रखती है; उस पर श्री लक्ष्मी जी अवश्य दया करती हैं।"

घर के प्रत्येक कमरे साफ और स्वच्छ न होने से वायु दूषित हो जाती है, और वायु दूषित होने से रोगादि अनेक व्याधियें घर के लोगों को लग जाते हैं। जिस घर में स्वच्छता रहती है, वहां कोई रोग होने का डर नहीं। गन्दगी और मैली जगह में तो मन यों भी नहीं टिकना चाहता; क्योंकि वहाँ पर सदा मक्खियें भिनभिनाया करती हैं।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि प्रत्येक वस्तु को यथा स्थान अलग-अलग रखना स्त्री का मुख्य काम है। ऐसा न होने से अनेक खराबियें होने का डर है—जैसे, मसाला ढूढ़ने के लिए अचार के बर्तन में, चावल के लिए आटा के बर्तन में हाथ पड़ जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। चीनी के धोखे में नमक उठा कर डाल देना भी अव्यवस्थित चीजें रखने का ही परिणाम है। और फिर यदि रसोई-घर में साफ-सुथरे कपड़ों की पिटारी उठाकर रखदें और सब कपड़े काले हो जायें, तो क्या यह मूर्खता नहीं है? वास्तव में ऐसे काम उन्हीं स्त्रियों से अधिक होते हैं जो या तो फूहड़ हों, या आलसी और या जिन्हें काम करने का ढंग न आता हो।

शिक्षित-महिलाओं से कोई त्रुटि न होती हो, यह बात हम कदापि नहीं कह सकते। भूल करना प्राणी मात्र का स्वभाव है—किन्तु जिस तरह शिक्षित और अशिक्षित की बुद्धि में आकाश-पाताल का अन्तर हो जाता है, उसी तरह उनकी बातचीत, उनके काम, आचार विचार और व्यवहार आदि सभी बातों में भारी भेद उत्पन्न हो जाता है। पढ़ी-लिखी और एक शिक्षिता महिला यदि कोई भूल करेगी भी तो वह सुलझी हुई भूल होगी—ऐसी नहीं कि उसका सुधार ही न हो सके

यदि होय भी तो उसमें अधिक विलम्ब अथवा कठिनाई का सामना करना पड़े। शिक्षिता स्त्रियें बहुत समझ-बूझ कर प्रत्येक काम करती हैं—सब से बड़ी बात तो यह है पढ़ी-लिखी स्त्रियों को हर बात और हर काम में अपनी मान-हानि होने का भय रहता है; और इसी लिये वे कोई भी काम बिना समझे बूझे करने में संकोच करती हैं। विपरीत इसके यदि अनपढ़ स्त्री की गलती पर कोई उसे यह कहदे कि "तू तो बड़ी गँवार है" तो उसे इतना माख नहीं लगेगा, जितना कि एक शिक्षिता केवल इतनी सी बात पर सिसक-सिसक कर अपना बुरा हाल कर लेगी। कहने का अभिप्राय यह है कि अनपढ़ तो एक तरह से गँवार या मूर्ख है ही फिर वह भला क्यों इस शब्द पर नाराज होने लगी? इतना ही क्यों—वह तो पहले भी कई बार यह शब्द अपने लिये सुन चुकी होती है और इसका उसे एक तरह से अभ्यास भी हो जाता है, इसीलिये वह बारम्बार उस शब्द को सुनकर भी उतना अप्रसन्न नहीं हो सकती, जितना कि एक शिक्षिता स्त्री। यह सब लिखने से हमारा यह मतलब कदापि नहीं कि मान-सन्मान केवल पढ़े-लिखे और शिक्षित लोगों का ही होता है—अनपढ़ों का बिल्कुल नहीं अथवा जीने का अधिकार केवल शिक्षित-समुदाय को ही है, अशिक्षितों को है ही नहीं। अनपढ़ बहनों के कोमल हृदय को ठेस पहुँचाने के लिये हमने यह बात नहीं लिखी है; और न ही इससे उन्हें दुःखित होना चाहिये। पढ़ना-लिखना तो अपने-अपने भाग्य की बात है, और विशेषतया कन्याओं के माता-पिता की इच्छा अथवा उनकी परिस्थिति पर ही निर्भर है। इसके लिये कन्याओं को दोष देना सर्वथा अनुचित और न्याय-विरुद्ध होगा।

बहुधा देखा गया है कि, बहुत-सी अनपढ़-स्त्रियें पढ़ी-लिखी स्त्रियों के भी कान काटती हैं। अनेक बातों में वे उनसे बढ़ी-चढ़ी और सिद्ध-हस्त साबित होती हैं। अंग्रेजी-राज्य में भारत से विद्या-बुद्धि और कला-कौशल तो मानो एकदम लोप ही हो गये थे। यही कारण है कि हमारे देश में स्त्रियें तो क्या पुरुषों को भी जितनी संख्या में शिक्षित होना चाहिये था, उतना वे नहीं हो सके। खुशी की बात है कि अब हम स्वतन्त्र हैं—पराधीनता का अभिशाप हमारे सिर से अब उतर चुका है। हमारे माननीय नेतागण तथा हमारी लोकप्रिय सरकार जल्दी-से-जल्दी हमारे देश को पुनः उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुंचा देने के लिये कटिबद्ध होकर नित्य नई-नई योजनायें बना रही हैं। हर्ष की बात है कि हमारी प्रान्तीय-सरकार अपने प्रान्त में प्रति एक मील पर एक स्कूल खोलने की इच्छा रखती है—इतना ही नहीं—ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, आबाल-वृद्ध सभी को वह साक्षर—पढ़ा-लिखा देखना चाहती है। कितने सौभाग्य की बात है—कैसे आनन्द और सुख की बात होगी उस दिन, जबकि हमारे देश का बच्चा-बच्चा पढ़ा-लिखा और शिक्षित होगा! वास्तव में अविद्या ही हमारे पतन का कारण बनी हुई थी अभी तक।

शिक्षिता बहनों से तो कहना ही व्यर्थ होगा, कि वे अपनी सन्तान को शिक्षा दिलाने की उचित व्यवस्था करें—क्योंकि वे तो स्वयं ही विद्या-अविद्या की लाभ-हानि को भली प्रकार जानतीं और समझती हैं। हमारा अभिप्राय तो केवल उन बहनों को समझाने का है जो अभाग्य-वश न तो स्वयं पढ़-लिख सकी हों और न ही वे अपने बच्चों को पढ़ाना

जरूरी समझती हों—उनसे हम सानुरोध यह प्रार्थना करेंगे कि वे जैसे भी हो, अपनी सन्तानों को पढ़ाने-लिखाने का प्रबंध अवश्यमेव करें। अनपढ़ मनुष्य गधे के समान होता है। केवल नौकरी करने के लिये ही पढ़ना जरूरी नहीं है—वरंच पढ़ने से मनुष्य सचमुच ही मनुष्यत्व-लाभ कर लेता है। कभी भूल कर भी अपने मन में यह धारणा मत जमने दो कि जब हम नहीं पढ़े तो हमारे बच्चे ही पढ़कर क्या करेंगे? याद रक्खो, यह गलत धारणा ही स्त्री या पुरुष को गड्ढे में ढकेलने के लिये काफी है।

इति श्री श्रीमती साधनासेन विरचितम् 'चतुर-गृहिणी' प्रथम खण्डे समाप्तम्।

द्वितीय-खण्ड

१

पाक-विज्ञान

नित उठ भोर ही स्नान करै, अरु पूजा-पाठ करै हिय सें।
फिर भोजन आये बनाये प्रथम, निज सास-ससुर कूँ जिवायजियसें॥
पति-सेवा करै मन लाये सखि, तब होय सफल जीवन यह तेरा।
शील-स्वभाव न त्याग करे, चहे विपद आये घिरे घोर अंधेरा॥

शारीरिक शक्ति एवं सौंदर्य को बनाये रखने के लिए पौष्टिक-भोजन नियमित व्यायाम, संयमी जीवन, शुद्ध वायु, स्नान और आवश्यक, किन्तु सुन्दर वस्त्रालंकार आवश्यक हैं। शरीर-रक्षा के लिए भोजन एक खास वस्तु है। प्रति-दिन ऐसा भोजन करना चाहिये, जिससे शरीर में शुद्ध रक्त अधिक मात्रा में तैयार हो, माँस बने और शरीर को शक्ति प्राप्त हो। भोजन के साथ जल भी उतना ही जरूरी है, जितना कि शरीर के लिए शुद्ध-रक्त। भोजन ऐसा होना चाहिये, जिसमें प्रोटीन,

खनिज-पदार्थ, खाद्यौज (vitamins), वसा (Fats), कर्बोज (Carbodydrate) और जल समुचित मात्रा में मौजूद हों। नीचे हम कुछ खाद्य-पदार्थों के गुण लिखते हैं :—

उत्तम प्रोटीन वाले पदार्थ—दूध, दही, मट्ठा, पनीर, पत्तेवाले शाक जैसे—पालक, बिना चोकर निकला हुआ आटा, गेहूँ का आटा, जौ, बिना पालिश का चावल, मटर, दालें, चना, आलू, गाजर, चुकंदर, हाथिचक, सागूदाना फल और बिना पत्ते वाले शाक—इनमें प्रोटीन मध्यम श्रेणी की होती है। उत्तम प्रोटीन न मिलने से शरीर की भली भाँति वृद्धि नहीं होती। बालक कमजोर रहता है। माँस-पेशियाँ दुर्बल रहती हैं। रोग का मुकाबला करने की शक्ति कम हो जाती है। खनिज लवण—शरीर का चार प्रतिशत भाग खनिज लवणों से बनता है। वैसे थोड़े बहुत लवण शरीर के सभी तन्तुओं में पाये जाते हैं, पर उनकी विशेष आवश्यकता अस्थि (हड्डी) और दाँतबनाने के लिये होती है। इनके बिना हमारे अंग और हृदय ठीक काम नहीं कर सकते। हमारे शरीर में बीस प्रकार के लवण पाये जाते हैं। इनमें कुछ तो क्षार बनाते हैं और कुछ अम्ल। चूना, पोटेशियम, सोडियम, लोहा और मैगनेशियम सबसे ज़रूरी हैं, और ये क्षार बनाते हैं। अम्ल बनाने वालों में फासफोरस, गंधक और क्लोरिन हैं। भोजन में ये तत्व इस प्रकार होने चाहिये, कि जिससे न तो अधिक क्षार बने, और न अधिक अम्ल ही। दोनों ही यदि घट जायें अथवा एक दम ही बढ़ जायें, तो हानि कारक होते हैं।

चूना—निम्न-लिखित पदार्थों में अधिक मात्रा में पाया जाता है—

दूध, मट्ठा, पनीर, छाना-जल, अखरोट, दालें, फल, पत्तेदार शाक इत्यादिः। दही में भी चूना अधिक मात्रा में पाया जाता है।

फासफोरस—दूध, मट्ठा, सोया, हेम, दालें, अखरोट, गेहूं, जौ, जई, पालक, मूली, खीरा, गाजर फूलगोभी में अधिक होता है। मच्छली में भी फासफोरस बहुत होता है। यह आँखों की ज्योति बढ़ाने वाला है।

लोहा—दाल, अनाज, पालक, प्याज, मूली, हाथीचक, तरबूज खीरा, शलजम के पत्ते और टमाटर में।

वसा—शरीर में पहुंच कर शक्ति उत्पन्न करती है। जो वसा बहुत-से स्थानों में त्वचा के नीचे जमा हो जाती है, यह गर्मी-सर्दी से शरीर की रक्षा करती है। निम्न-लिखित चीजों में वसा अधिक मात्रा में पाई जाती है दूध, घी, मक्खन, वानस्पतिक-तेल, अखरोट, बादाम, चिलगोजा, आदि। वसा चर्बी को कहते हैं, इसका शरीर में होना बहुत जरूरी है।

कर्बोज (Carbodydrate)—कर्बोज में तीन प्रकार की चीजें शामिल हैं—(१) शर्करा—भांति-भांति की शकर, (२) श्वेतसार (strach)—जैसे मैदा, सागूदाना, (३) काष्ठोज—जैसे फलों और तरकारियों के रेशे। इन रेशों को मनुष्य पचा नहीं सकता। ये ज्यों के त्यों आँतों से निकल जाते हैं। कर्बोज निम्नांकित पदार्थों में अधिक होता है—इससे वसा बनती है। अनाज, दालें, फल, चावल, सारदाना, अरारोट, अंगूर, गन्ना शकरकंद, आम, अंजीर आदि।

खाद्योज (Vitamins)—ये पाँच प्रकार के होते हैं। खाद्योज

नं० १—शरीर त्वचा और श्लैष्मिक कलाओं को मजबूत बनाता है। रोगों से रक्षा करता है। भोजन में इसकी कमी होने से रतौंधी हो जाती है। यह मक्खन, घृत, दूध, करमकल्ला, पत्तों वाले शाक, चुकंदर, गाजर, शकरकंद, टुमाटो, मक्की, अंकुर, फूटे हुए चनों में पाया जाता है। खाद्योज नं० २—मस्तिष्क, नाड़ियों, हृदय, यकृत और पाचक ग्रंथियों को शक्ति देता है। इसके अभाव से बेरी-बेरी रोग हो जाता है, जो प्रायः बंगाल-प्रान्त में बहुत होता है। टुमाटो, पालक, मूली, सलजम, साबित गेहूँ का आटा, जौ, मक्की, बाजरा, जई, सेम, मटर, दाल, चना और अखरोट आदि में यह खाद्योज बहुत मात्रा में होता है। मैदा और पॉलिस वाले चावलों में यह नहीं होता। यदि चावलों का माँड़ निकाल दिया जाये, तो भी बिना पॉलिस किये चावलों में यह न रहेगा। खाद्योज नं० ३—रक्त को शुद्ध रखता है। इसके अभाव से रक्त-विकार उत्पन्न हो जाता है, त्वचा में जगह-जगह खून के चकत्ते पड़ जाते हैं। इसकी कमी से अस्थियाँ और दाँत मजबूत नहीं रहते। आँतें ठीक काम नहीं करतीं और रोग-नाशक शक्ति का ह्रास होने लगता है। यह करमकल्ला, पालक कुल्ले, फूटी हुई दालें, कुल्ले फूटे हुए गेहूँ, चना, नींबू, नारङ्गी के ताजे रस में, टुमाटो, गाजर, शलजम के पत्ते, आलू, सेम, लोबिया, शकरकंद, अनन्नास, और शरीफा आदि में अधिक पाया जाता है। खाद्योज नं० ४—अस्थियों और दाँतों की मजबूती के लिये आवश्यक है। इसके अभाव से बच्चों को रिकेट्स दाँत देर से निकलना, और पैरों की अस्थियाँ, शरीर का भार न सँभालने के कारण, टेढ़ी हो जाता है। यह खाद्योज दूध, घी मक्खन में पाया जाता है।

सरसों, तिल आदि वानस्पतिक तेलों में बिलकुल नहीं होता। जब सूर्य का प्रकाश हमारी त्वचा पर पड़ता है, तो उसकी अल्ट्रा-वायोलेट किरणों के प्रभाव से यह खाद्यौज हमारी त्वचा में बन जाता है। यदि सरसों या तिल के तेल को थोड़ी देर के लिए धूप में रख दें, तो यह खाद्यौज उसमें भी बन जाता है। शरीर को थोड़ी देर धूप में नंगा रख कर धूप खाना बड़ा लाभदायक है। शिशुओं के शरीर पर तेल की मालिश कर थोड़ी देर धूप में लिटाना बहुत हितकारी है। खाद्यौज नं० ५—इसके अभाव से स्त्री पुरुष दोनों में निष्फलता पैदा होती है; और वे इसके बिना कुछ नहीं कर सकते।

इन तमाम बातों से यह सिद्ध होता है कि हमारा भोजन ऐसा होना चाहिये, जिससे शरीर के प्रत्येक अवयव को पुष्टि मिलती रहे, शुद्ध-रक्त बने और रोग-नाशक शक्ति प्राप्त हो। अनेक विद्वान् डाक्टरों ने बहुत-कुछ सोच-विचार करने के बाद, प्रत्येक व्यक्ति के लिये भोजन की मात्रा निम्न-लिखित प्रमाण से स्थिर की है। सालिम गेहूं का आटा ६ छटांक, दाल डेढ़ छटांक, दूध आधा सेर, घृत डेढ़ छटांक, शर्करा १ छटांक, चावल २ छटांक, हरे पत्तोंवाला शाक २ छटांक, फल २—३ छटांक, जल यथेच्छ—यह भोजन उत्तम, हलका, पचनशील, सस्ता और चौबीस घण्टे के लिये है। दिमागी-परिश्रम करने वालों के लिये भी यह भोजन अत्युत्तम है। अधिक शारीरिक-परिश्रम करनेवाले व्यक्ति शर्करा और घृत ज्यादा मात्रा में खासकते हैं। अधिक पौष्टिक भोजन परिश्रम करने वालों के लिये ही ठीक है।

भोजन बनाने की विधि शाकादि को कड़ाई में बहुत देर तक

भूनना नहीं चाहिये। इससे उस की खाद्यौज-शक्ति नष्ट हो जाती है। दूध को भी देर तक उबलते रहने से उसके खाद्यौज नष्ट हो जाते हैं। चावल बनाने के पहले बहुत देर तक उन्हें पानी में न भीगा रहने दें, और न पकाने पर उसका माँड़ ही निकालें। जिस जल में शाक उबाला जाये, उस जल को फेंकना नहीं चाहिये, बल्कि उसी में शाक को पकने दिया जाये। गेहूं का मोटा आटा खायें तो ठीक है, यदि चोकर सहित हो तो और भी अच्छा है। मैदा हानिप्रद होता है। दालें सब छिलकों-समेत बननी चाहियें।

रोटी—बनाने से पहले रोटी का आटा खूब रौंद लेना चाहिये। यह याद रक्खो, आटा जितना अधिक गुँधा हुआ और मुलायम होगा, रोटियें उतनी ही अच्छी, मीठी नर्म होंगी। जब आटा पिघले हुए मोम की तरह मुलायम हो जाय, और हाथ तथा थाली में न चिपके; तब समझो कि आटा तैयार हो गया। फिर छोटी-छोटी लोई तोड़ कर हाथ से या चौके-बेलन से गोल-गाल सुन्दर रोटियें बना कर लोहे के तवे पर सेंको। एक बार जिस ओर सेंक चुके उसे फिर तवे पर मत उलटो। दोनों ओर सेंक चुकने के बाद उसे उतारलो और तवे पर दूसरी रोटी छोड़ दो। चूल्हे के सामने थोड़ी सा आंच निकाल कर फैला दो, जिसमें धुवां बिलकुल न हो। उन्हीं अंगारों पर रोटी का पहले वह भाग सेंको, जो तवे पर पीछे सेंका गया हो। आँच पर रोटी को बराबर घुमाते और उलटते-पलटते रहना चाहिये—कहीं पर जलने न पाये। जब रोटी फूल जाये, तो उसे तुरन्त ही दूसरी ओर पलट दो। जब उधर भी सुर्खी आ जाए, तो झाड़ कर रख दो।

दाल—पहले जल पतीले में डाल कर उसे गर्म होने दो—संयुक्त-प्रान्त में बहुधा स्त्रियें इस जल को अदहन कहती हैं। इसके साथ ही हल्दी भी छोड़ देनी चाहिये। जब तक जल गर्म हो, तुम दाल को बीन कर खूब साफ करलो, और पानी गर्म होते उसे पतीली में छोड़ दो। ऐसा करने से दाल में जो कुछ कराई रहती है, वह फूल कर उबाल के साथ ही बाहर निकल जाती है, किन्तु जो दाल खौलते हुए पानी में छोड़ी जाती है, उसकी कराई बाहर नहीं हो पाती। दाल छोड़ चुकने के बाद पिसा हुआ गर्म-मसाला छोड़ कर उसे ढँक दो। जब भली प्रकार उबाल आ जाये, तब थोड़े समय के लिये ढक्कन उतार दें और उबाल को साफ करके आँच मन्दी करदें, जिससे दाल का पानी उबल कर नीचे न गिरे। कुछ देर बाद जब दाल फट जाये, तो अन्दाज से नमक और खटाई भी उसमें छोड़ दें। बहुत-सी स्त्रियें नमक पहले भी दाल के साथ ही छोड़ देती हैं। पाव भर दाल के लिये तोला भर नमक काफी होता है। यदि अन्दाज ठीक न हो, तो जहाँ तक हो सके नमक कम ही डालें। क्योंकि खाते समय नमक की कमी होने पर और लिया जा सकता है—पर यदि अधिक है तो उसे कम नहीं किया जा सकता। यही हो सकता है कि बढ़े हुए नमक को कम करने के लिये उसमें पानी और डाला जावे, किन्तु ऐसा करने से फिर दाल का स्वाद ही जाता रहेगा। इसलिये नमक पहले ही ठीक से अन्दाज करके छोड़ना चाहिये। अदहन का पानी भी ऐसे अन्दाज से छोड़ना चाहिये, कि दूसरी बार पानी डालने की जरूरत ही न पड़े।

ध्यान रहे, कि दाल पकाते समय शुरू से आखीर तक आँच मन्द-मन्द ही रहनी चाहिये, और बराबर एक-सी जलता रहे। कड़ी आँच पर

पकी हुई दाल में वह मिठास ही नहीं रह जाता, जो मन्द आँच पर पकी हुई दाल में होता है। जब देखें, कि दाल अच्छा तरह से पक कर मिल गई है, तो उसे उतार लें और घी में हींग-जीरा आदि गर्म करके छौंक दें।

चावल—इसे भी बीन कर पहले खूब साफ करलो, और पानी में २-३ बार धोकर चढ़े हुए अदहन में छोड़ दो यदि हो सके तो ऊपर से थोड़ा-सा घी छोड़ कर चला दें और पकने दें। पर यह याद रक्खें, कि घी छोड़ने के पहले पानी को नाप लें, जिससे माँड निकने की जरूरत न पड़े। पानी नापने का सीधा तरीका यह है, कि चावल के ऊपर बीच की अंगुली के एक पोर के बराबर पानी रहे, इस प्रकार पानी का अन्दाज कर उस ढँक दें। पक जाने पर उतार लें। यदि पानी कुछ अधिक रहे, तो चावल पकने के थोड़ी देर पहले ही, पकने भर पानी छोड़ कर शेष फालतू पानी निकाल देना चाहिये।

तरकारी—यों तो यह कई तरह से बनाई जाती है; किन्तु हम यहाँ स्थानाभाव के कारण केवल एक ही तरीका, जो सीधा-सादा और आसान भी है—लिखेंगे। पहले कड़ाही में घी छोड़ कर उसमें जीरा, मेथी, थोड़ीसी लालमिर्च और हल्दी डाल कर खूब भूनें। जब सुर्ख हो जायें और उसकी सुगंध बढ़ने लगे, तब पहले से चीरी हुई तरकारी भी उसमें डाल कर खूब भूनें। पश्चात्—यदि रसेदार तरकारी बनानी हो तो उसमें थोड़ासा पानी छोड़ दें। बिना रसेदार में पानी डालने की जरूरत नहीं। क्योंकि शाक-सब्ज़ी पकते समय अपने-आप ही पानी छोड़ती हैं और उसी में पक भी जाती हैं। मसाला, यदि पहले न

छोड़ा गया हो, तो पानी के साथ छोड़ कर चला देना चाहिये। उसी समय अन्दाज से नमक भी छोड़ कर उसे ढाँक दें। जब पकने में जरा-सी कसर रह जाये, तो काली-मिर्च या गर्म-मसाला डाल कर उतार लें। प्रायः सभी तरकारियों में थोड़ी खटाई या दही छोड़ देने से स्वाद बढ़ जाता है। इसका छोड़ना-न छोड़ना इच्छा पर निर्भर है।

यह तो हुई साधारण भोजन बनाने की विधि, जो प्रायः नित्य ही प्रयोग में आता है—अब हम यहाँ कुछ खास-खास चीजें बनाने का तरीका भी लिखते हैं; जिससे धनी-निर्धन सभी तरह के परिवार की स्त्रियाँ लाभ उठा सकती हैं।

खीर—पहले दूध को एक बड़े बर्तन में मन्दी-आँच पर खूब औटने दें। जब दो सेर का डेढ़ सेर दूध रह जाये, अर्थात् एक-चौथाई दूध जल जाये, तब उस में (धोकर पहले से धीमे भुने हुए चावल) जो वजन में आधापाव से अधिक न हों, छोड़ दें। ऊपर से कतरे हुए बादाम, पिस्ते और धुली हुई किश्मिश भी उसी में डाल दें। अन्दाज से बूरा या चीनी डालकर उसे खूब अच्छी तरह से पकने दें। चीनी, एक सेर के लिये पाव भर काफी होती है। यदि इच्छा हो तो उसमें थोड़ा-सा घी भी छोड़ सकते हैं। खीर पक जाने पर जब ठंडी होने लगे, तो उसमें सुगंधी के लिये गुलाब या केवड़े का जल डाल दें। गर्म खीर उतनी स्वादिष्ट नहीं होती, जितनी कि ठंडी। इसलिये खीर खाते समय इस बात का ध्यान रक्खें कि वह अधिक गरम तो नहीं है। चावल के बदले इसी प्रकार मखाने की खीर भी बना सकते हैं। यह व्रत में खाई जाती है।

कढ़ी—पहले बेसन को मट्ठे में फेंट लें और उसमें अन्दाज से नमक, मिर्च व मसाला भी पीस कर मिला दें। पश्चात्—कड़ाही में घी या तेल छोड़ कर जीरा या मेथी डाल दें। जब वह लाल हो जाये, तब मट्ठे में घोले हुए बेसन को उसमें छोड़ दें और खूब पकाव। यदि पहले पकौड़ी बना सकें, तो वह भी इसमें छोड़ कर पकने दें। कढ़ी जितनी भी अधिक पकाई जायेगी, उतनी ही स्वादिष्ट होगी। खट्टा दही या मट्ठा हो तो और भी अच्छा है। कढ़ी घुटी हुई होनी चाहिये।

इसी प्रकार कई तरह का भोजन तैयार किया जा सकता है हमने तो केवल रोज-रोज काम में आने वाली कुछ बातें ही लिखी हैं। अभी हमें अपनी बहनों को गृहस्थी में काम आने वाली बहुत-सी बातें बतानी हैं, यदि हम इसी में फँसे रहेंगी तो फिर अन्य विषय छूट जाने का भय है, इसलिये इस विषय को हम यहीं छोड़ते हैं—किन्तु इस विषय को बंद करने के पहले यह मैं अपनी बहनों से बता देना चाहता हूँ, कि भोजन तैयार करते समय बड़ी पवित्रता और सावधानी की जरूरत है। यह बात हमें हर समय ध्यान में रखनी चाहिये कि भोजन ही वह खास चीज है, जिसके खाने से हमारे परिवार के लोगों में बल, बुद्धि, साहस और स्फूर्ति आदि गुण आते हैं। अत. उसे बनाते समय हमें हर बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये।

२

काम-धंधे

हा दैव ! नारी-जाति की, कैसी यहाँ है दुर्दशा।
गृहदेवियाँ कहते, सभी, पर, क्यों बनी हैं कर्कशा ?
आदर्श हिन्दू रमणियाँ, थीं देश में ऐसी कभी।
क्या नहीं हो सकतीं अब भी, भारती जैसी सभी ?

गृहदेवियों को कार्य-कुशल होना नितान्त आवश्यक है। जितना अधिक काम वे जानेंगी, उतना अधिक उनके लिये अच्छा है। पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी तथा गृह स्वामिनी होने के कारण समस्त गृहस्थी का भार एक मात्र उसी के ऊपर है। पुरुष तो घर से बाहर—केवल कमाने और धन-संचय करने की जिम्मेदारी रखता है, किन्तु गृहिणी के जिम्मे पूरी गृहस्थी की देख भाल का भार होता है, और इसी लिये उसे हर काम का ज्ञान होना जरूरी है। केवल भोजन बनाना, खाना और सो जाना ही जरूरी नहीं है। गृह-लक्ष्मी को तो हर समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए, कि उसकी जिम्मेदारी पुरुष से भी कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर है। पुरुष तो केवल कमाना ही जानता है, और अपने इसी काम या

गुण के कारण वह अपने आपको पूरी गृहस्थी का स्वामी कहलाने का हक रखता है—किन्तु विपरीत इसके, पत्नी का कार्यक्षेत्र बहुत लम्बा चौड़ा एवं महत्वपूर्ण है। उसे न केवल अपने स्वामी अथवा बच्चों के ही आराम की चिन्ता है, बल्कि साथ में सास-श्वसुर, देवर-देवरानी, जेठ-जिठानी, ननँद या परिवार के अन्य लोगों के आराम का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध और चिन्ता करनी पड़ती है। स्त्री, वास्तव में दया, क्षमा, उदारता, सहनशीलता, त्याग और बलिदानों का भण्डार है। वह दूसरों के लिये कष्ट सहना खूब जानती है। एक ओर जहाँ वह बहन बनकर भाई को अपने स्नेह-पाश में बाँध सकती है, मां बनकर शिशु-तुल्य पालन कर सकती है—वहाँ दूसरी ओर वह कामिनी बन कर कामीजन की काम-पिपासा शान्त करने का साधन भी बन सकती है। कोमलता में नारी शुद्ध-मोम से भी कहीं कोमल है, किन्तु समय पड़ने पर वह कठोर भी ऐसी बन जाती है कि पाषाण भी उसकी समानता नहीं कर सकता।

सृष्टि कर्त्ता ने नारी का निर्माण किया ही है इसीलिये, कि वह अपने सहचर—पुरुष के साथ मिलकर प्रत्येक काम में उसकी सहायता करे। पुरुष, जन्मते ही अपूर्ण है—किन्तु नारी का सहयोग प्राप्त होते ही वह पूर्ण हो जाता है। नारी है वास्तव में शक्ति—वह शक्ति, जिसे पाते ही पुरुष का शुष्क हृदय एकबारगी ही लहलहा उठता है—उसमें नई शक्ति एवं नये जीवन का संचार होता है। वह नारी से बल, बुद्धि साहस, स्फूर्ति और उत्साह पाकर दुनिया के विस्तृत कार्य-क्षेत्र में उतरता है—उतर पड़ता है सब-कुछ कर गुजरने की धारणा, एक दृढ़—सङ्कल्प लिये हुए। और तब—तब कोई भी काम उसके लिये कठिन नहीं

रह जाता। असम्भव को भी संभव करने की वह शक्ति रखता है—क्यों? शायद इसलिए कि शक्ति स्वरूपिणी नारी जो है उसके साथ! नारी अबला नहीं—सबला है। वह सब-कुछ कर सकती है दुनियाँ में।

बहनों! क्या अब भी तुम नहीं समझीं कि वास्तव में तुम कौन हो—कितनी शक्ति छिपी हुई है तुम्हारे अन्दर? कितने दुःख की बात है कि हमारी बहनें अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर न केवल कष्ट ही पा रही हैं, बल्कि अपना अपमान भी करवा रही हैं। हमें यह कदापि भूलना नहीं चाहिये कि इस सृष्टि की रचना और इसकी वृद्धि करने में हमारा सदा से ही एक प्रमुख हाथ रहा है। हम ही इस दुनिया की शोभा हैं, हमारे ही कारण यह दुनिया टिकी हुई है और इस विशाल संसार को प्रेमसूत्र से जकड़ कर बाँध रखने में हमारा ही मुख्य हाथ है। बहनों! गृहस्थी का सारा भार हमारे ऊपर होने के कारण हमारी जिम्मेदारियाँ भी बहुत बढ़ी हुई हैं। पति को भोजन बनाकर खिला देने भर से ही पति-सेवा नहीं हो जाती। हमें गृह-कार्यों में इतना निपुण होना चाहिये कि एक भी काम के लिए हमें किसी दूसरे का मुँह न तकना पड़े। चतुर-गृहिणी वही है जो घर का एक-एक काम अपने हाथ से करती है। भोजन बनाना, सीना-पिरोना, कशीदे काढ़ना, स्वेटर-मोजे-गंजी आदि बुनना, चक्की चलाना, कपड़ा रंगना, चर्खा कातना, शिशु पालन, बच्चों के लिये साधारण औषधियों का ज्ञान होना, यहाँ तक कि मैं तो कहूँगी—स्त्रियों को सुविधा देख कर गाना बजाना, नाचना, साइकिल और मोटर चलाना भी सीखना चाहिए।

कुछ लोग स्त्रियों को साइकिल या मोटर चलाती हुई देख कर

उनकी खिल्ली उड़ाते हैं, बल्कि उनके मन में कुछ भद्दे विचार तक भी उठने लगते हैं। यह उन लोगों की मूर्खता है—ऐसा वे ही लोग कहते हैं जो या तो खुद चरित्र हीन हैं या फिर वे ईर्ष्यावश स्त्री-समाज को अपने से आगे बढ़ते हुए नहीं देखना चाहते। मेरी तो समझ में नहीं आता कि लड़कियों को आखिर क्यों नहीं साइकिल या मोटर चलाना चाहिये? पाश्चात्य-सभ्यता की हम नकल नहीं करना चाहते, किन्तु हम किसी तरह अन्य देशवासियों से पिछड़ कर भी नहीं रहना चाहते। वहाँ की स्त्रियों का स्वास्थ्य क्यों हमारे देश की स्त्रियों से अच्छा है? या हमारे देश का जलवायु ठीक नहीं? यह कहना ही मानो अपने देश का स्वयं अनादर करना है। हमारे देश का जलवायु अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है। यदि कमी है तो केवल यह कि भारतीय इच्छानुसार व्यायाम आदि करने की स्वतन्त्रता नहीं है—इन्हें घर की चारदीवारी या भारी पर्दे के पीछे ही रहने की आज्ञा है। यही कारण है कि न तो हमारे देश की स्त्रियें किसी काम में उन्नति ही कर सकती हैं और न उनका शारीरिक-व्यायाम होने के कारण स्वास्थ्य ही सन्तोषप्रद होता है। स्त्रियों को साइकिल आदि न चलाने देना कहाँ की बुद्धिमानी है? मान लो कि घर में किसी को बड़ी सख्त बीमारी है, डाक्टर को फौरन ही बुलाना है, किन्तु घरमें सिवाय उस स्त्री के और कोई आदमी ऐसा नहीं कि जिसे डाक्टर के पास भेजा जाये। ऐसी दशा में, जरा कल्पना कीजिए—उस अभागिन की क्या अवस्था होगी? हाँ यदि उस समय उसके घरमें साइकिल है और वह स्वयं उसे चलाना जानती है, तो बिना एक क्षण का भी

विलम्ब किए वह साइकिल पर चढ़ कर डाक्टर को बुला ला सकती है। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई लाभ ऐसे हैं, जिन्हें देखते हुए बरबस ही यह कहना पड़ता है कि स्त्रियों को साइकिल आदि चलाना अवश्य सीखना चाहिए। कैसी दिल्लगी की बात है।—एक ओर जहाँ पश्चिमीय देशों की स्त्रियें साइकिल, मोटर, मोटर-साइकिल और यहाँ तक कि हवाई जहाज भी चलाने का साहस रखती हैं—वहाँ दूसरी ओर हमारे देश की स्त्रियाँ जमीन पर खड़ी हुई साइकिल भी नहीं सम्हाल कर रख सकतीं। पुरुष अधिकतर स्वार्थी होते हैं। वे नहीं चाहते कि उनकी स्त्रियाँ किसी बात में उनकी समानता करने का साहस करें—वे हर समय उन्हें पर्दे के भीतर ही देखना चाहते हैं।

किन्तु अब समय पूर्णतया बदल चुका है। स्वाधीन होकर भी यदि हम अन्यदेश वासियों से पिछड़े रहें, इससे अधिक लज्जा और दुःख की बात हमारे लिए और क्या हो सकती है। आज, जबकि हम स्वतन्त्र होने के बाद, बड़ी-बड़ी योजनायें, बड़े-बड़े कार्य-क्रम और लम्बी-चौड़ी एवं बढ़ी हुई अभिलाषायें लेकर मैदान में आए हैं, तो क्या यह उचित होगा कि हम स्त्रियों को इस दौड़ में पीछे रखा जाये? हमारे भी हृदय है—हमारी भी अपनी अलग महत्वाकांक्षायें हैं—हम भी उन्नति पथ पर अग्रसर होने की इच्छाएँ रखती हैं—दुनिया भर के नारी-समाज में हम भारतीय-महिलाओं को भी अपना एक उच्चस्थान बनाना है, किन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि डटकर हम अपनी मर्यादा के भीतर संगठितरूप से प्रत्येक काम करें। इसके लिए सर्व प्रथम हमें शारीरिक परिश्रम करने का अभ्यास करना

होगा। उछलना-कूदना, भागना-दौड़ना, पेड़ पर चढ़ना, तैरना आदि ये सभी काम ऐसे हैं, जिन्हें इच्छा करने पर प्रत्येक स्त्री सुविधानुसार कर सकती है। छोटे कामों से शुरू करके बड़े से बड़े और कठिन से कठिन काम भी हमें करने चाहिये।

किसी से यह बात छिपी नहीं है कि पहले हमारे देश में चौदह विद्याएँ और चौसठ कलायें प्रसिद्ध थीं। क्या कोई कह सकता है कि वह चौदह विद्यायें अथवा चौसठ कलायें आखिर हैं कौन-कौन-सी? सुनिये; चौदह विद्याओं में चतुरता की बातें हैं और चौसठ कलाओं में है हाथ से सम्बन्ध रखने वाली चीजों का विशद्वर्णन। चौदह विद्यायें ये मानी गई हैं—ऋग्वेद, यजेर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद—ये चार वेद है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण तथा निरुक्त—ये चार उपवेद। और छन्द, ज्योतिष, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र तथा पुराण—अथवा पिछले चार के स्थान पर आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व तथा स्थापत्य (शिल्प) ये छः वेदांग। बस, यही हैं वे चौदह विद्यायें जिनका प्राचीन कथाओं में विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है।

अब रही चौसठ कलायें—क्षेमेन्दु कवि ने उन्हें इस प्रकार गिना कर बताया है—१ गायन, २. वाद्य (बाजा बजाना), ३. नाचना, ४. नाटक, ५. चित्रकारी, ६. बिन्दी आदि लगाना, ७. तण्डुल-कुसुमावलिविकार—अर्थात् सुन्दर चावलों से घर में बेल-बूटे बनाना, ८. पुष्प-शय्या—फूलों की सेज सजाना, ९. दशन-वसनाङ्ग-राग—दांत और कपड़े रँगने की रीति जानना, १०. गर्मी में ठण्डक के लिये मरकत-माटी आदि से आँगन-पूरना, ११. जल-तरङ्ग आदि बजाना,

१२. जल में तैरना, १३. चित्राश्चर्ययोग—भीतरी रुचि (आन्तरिक-इच्छा) को बिना मुख से बोले केवल भावों से ही प्रकट करना, १४. माला और हार बनाना, १५. वेणी तथा फूलों का गुच्छा बनाना, केश सँभारना आदि, १६. नेपथ्य योग (वेष बदलना), १७. कर्ण-पत्र भंग (कानों में पहनने की चर्जें तैयार करना), १८. अङ्गों में सुगन्धित पदार्थों के लगाने की विधि, १९. भूषण पहिनने की विधि जानना (अर्थात् कौन सी चीज कहां पहनी जाती है), २०. इन्द्रजाल (कौतुक दिखाना); २१. अपने को सुन्दरी बनाने की रीति जानना, २२. हस्त लाघव (फुर्ती और सफाई से सब काम करना), २३. शाक-तरकारी आदि बनाना, २४. चटनी आदि बनाना, २५. सीना-पिरोना, २६. सूत्र क्रीड़ा, २७. प्रहेलिका (पहेली या गूढ़ अर्थ जानना और पूछना), २८. प्रतिमाला (शीघ्र उत्तर देना), २९. वाक् चातुर्य (बोलने में चतुर होना), ३० पुस्तक पढ़ना, ३१. किस्से कहानी जानना, ३२. समस्या-पूर्ति (काव्य रचने की विधि जानना), ३३. कुर्सी आदि बुनना, ३४. समय पर युक्ति सोचना, ३५. घर सजाना, ३६. चीजों की रक्षा करना, ३७. चाँदी-सोने की पहचान करना, ३८. सब धातुओं का गुणावगुण जानना, ३९. मणिराग-ज्ञान, ४०. आकार-ज्ञान, अर्थात् नगों के रखने और पहचानने की जान कारी। जैसे—यदि सच्चे हीरे को परख करनी हो तो एक कागज में छिद्र करके, चश्मे की तरह हीरे को आँख पर लगाकर उस छिद्र को देखे; यदि छेद एक ही दिखाई दे तब तो हीरा असली, अन्यथा नकली समझना चाहिये। दूसरी विधि यह है कि हीरे के नीचे अँगुली रख कर देखें, यदि अँगुली की रेखायें

ऊपरी भाग में दिखाई दें तब तो हीरा नकली, और यदि रेखायें न दिखाई पड़ें तो असली जानें। ४१. वृक्षायुर्वेद (पौधों के बोने का समय और उपजाने की रीति जानना,) ४२. मेंढ़ा, मुर्गा, तीतर, बटेर आदि के युद्ध की बातें जानना, ४३. तोता-मैना, चकोर आदि को पाल-पोष-कर पढ़ाना, ४४. उत्साहन, ४५ केश-मार्जन (पति का शरीर-मर्दन, तेल-मालिश तथा बाल काले करना) ४६. थोड़े शब्दों में मन की बात कहना, ४७. दूसरे देशों की भाषाओं का ज्ञान होना, ४८. देश के विभिन्न प्रान्तों की भाषायें जानना, ४९. पुत्र-प्राप्ति के हेतु पति को आधीन करना, ५०. धारण-शक्ति को बढ़ाना, ५१ यन्त्र-ज्ञान (कल-पुर्जों की जानकारी प्राप्त करना), ५२. दूसरों के स्वर में स्वर मिला कर गाने की रीति जानना, ५३. मानस-काव्य, ५४. कोष-छन्द-ज्ञान, ५५. क्रिया-विकल्प, ५६. धूर्त-ज्ञान (यह जानना कि कैसे-कैसे छलों से लोग एक दूसरे को छलते हैं,) ५७. वस्तु-गोपन ५८. शतरंज, जुआ, ताश आदि खेलों का दाँव-पेंच जानना, ५९. वशीकरण (दूसरे को वशमें करने के उपाय) ६०. बच्चों को खुश करने और उत्तमोत्तम शिक्षा देने की रीति जानना ६१. विनय करना, ६२. प्रार्थना विनय करने की विधि जानना, ६३-शारीरिक-बल संचय (कसरत-व्यायाम आदि करना) और, ६४-विद्या-ज्ञान। अब यह बात निर्विवाद रूप से सत्य प्रमाणित हो चुकी है कि प्राचीन-काल में हमारे देश की स्त्रियों को हर काम सीखने की पूर्ण स्वाधीनता थी। यदि ऐसा न होता तो हमारे धार्मिक ग्रन्थों अथवा परम आदरणीय शास्त्रों या पुराणों में इसका उल्लेख कदापि न किया जाता। इस विषय को पढ़ तथा समझ

बूझ कर भी जो पुरुष स्त्रियों के प्रति उदार-भाव न रख कर अपना दृष्टिकोण संकुचित ही बनाये रक्खेंगे; उन्हें यदि भयानक, कठोर, अनुदार, शुष्क-हृदय, निर्दय, अन्यायी और अत्याचारी भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। हम यह नहीं कहते कि प्रत्येक स्त्री को चौदह-विद्या-निपुण अथवा चौंसठ-कला-युक्त ही होना जरूरी है। ऐसा करने की न तो इतनी सुविधायें ही हैं और न इतना समय ही। तो भी, जहाँ तक हो सके—उपरोक्त कलाओं में से यदि प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा भी करके, अधिक से अधिक बातों की जानकारी प्राप्त कर सकें तो बहुत अच्छा हो। कोई भी स्त्री, चतुर-गृहिणी तभी बन सकती है जब कि उसे हर बात और हर विषय का थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य हो। गृहस्थाश्रम, सब आश्रमों से श्रेष्ट और ऊँचा इसीलिये माना गया है कि इसमें रहने वालों को लगभग दुनिया भर की सभी बातों का ज्ञान रखना पड़ता है। सच्चा गृहस्थ वही है जो मन लगा कर अपने स्त्री-बच्चों, कुटुंबियों और दीन-दुःखियों का पालन-पोषण करे, अतिथि-सत्कार करने से कभी जी न चुरावे, आत्मीय-स्वजनों और कुटुंबियों का प्यारा बना रहे, साधू सन्त, गो-ब्राह्मण और महापुरुषों की सदा सेवा करता रहे, घर आये हुए भिक्षुक को खाली हाथ कभी न लौटने दे, दूसरों के प्रति सदा नम्र बना रहे, जहाँ तक हो किसी को अपनी तरफ से कष्ट न पहुँचने दें—भले ही वह तुम्हारे साथ कैसा भी व्यवहार क्यों न करे। नित्य नियम से सन्ध्योपासन, पूजा-पाठ, स्तुति प्रार्थना, हवनादि—जो कुछ भी संभव हो और जिस रीति से भी चाहे—अपने इष्ट देव का स्मरण जरूर करता रहे। वे परम दयालु एवं करुणा कर विश्वेश ही

हम गृहस्थियों की रक्षा करते हैं। प्रत्येक गृहस्थ का यह परम कर्त्तव्य है कि नित्य प्रातः और सायंकाल वह भगवद्-चिन्तन अवश्य करे, भले ही वह किसी रूप में भी क्यों न हो!

बहनों! तुम्हें कभी भी यह बात मनसे भूलनी नहीं चाहिये, कि पत्नी ही गृह-तन्त्र की संचालिका है, वही गार्हस्थ्य-जीवन का उद्गम-स्थान है, गृहस्थी की देख-रेख का अधिकतर भार उसी के कंधों पर है—अतः उसे हर समय हर एक बात का ध्यान रखना बहुत जरूरी है। प्रत्येक स्त्री को गृह-कार्य में इतना चतुर होना चाहिये कि पति को घरके किसी काम के लिये चिन्ता न करनी पड़े। जिस घरमें पत्नी मर्यादा के भीतर रहती हुई घर का सब भार अपने ऊँपर ले लेती है, उस घर में कदाचित् ही कभी कोई कलह अथवा पति-पत्नी में झगड़ा हो तो हो, अन्यथा हर समय सुख और आनन्द की लहर से ही वह घर भरा-पूरा रहेगा। ऐसी कार्य-कुशल, बुद्धिमती, पतिव्रता और चतुर-गृहिणी को पाकर वह कौन निष्ठुर पति ऐसा होगा जो अपने आप को परम भाग्यवान न समझे?

३

कपड़े रँगना

बहु भांति रँगे निज वस्त्रों को. धारण कर नारी निकलती जब।
वह सुन्दर छवि न भूलि सकैं, मानों तनसे महक निकलती तब॥
वस्त्रालङ्कार ही शोभा हैं, मन को हर बार लुभाये रहे।
पर हाय! दुखित मन होता है, पति-बिछोह में नारी सिसकती जब॥

प्रायः स्त्रियों को रंगे हुए कपड़े पहनने का बड़ा शौक होता है, और वह उन्हें लगते भी हैं अच्छे। कुछ कपड़े—अधिकतर बढ़िया धोती या साड़ी तो ऐसी होती हैं, जो मिलों—कारखानों से ही रँगी हुई आती हैं। ऐसे वस्त्रों को घर पर रँगने की जरूरत नहीं होती, क्योंकि उनका रंग विशेषतया पक्का ही होता है। किन्तु इन कपड़ों के दाम अन्य साधारण कपड़ों की अपेक्षा अधिक होने के कारण, कम आय वाले परिवार की स्त्रियों के लिये खरीदना और खरीद कर पहनना, किसी तरह भी संभव नहीं। यदि किसी स्त्री ने बहुत हठ या विनय करके कभी कोई ऐसी मार्थी साड़ी मोल भी ले ली, तो क्या वह उसे घर पर रोज-रोज थोड़ा पहनने लगी? ऐसे मूल्यवान वस्त्र तो बहुत

कम—वह भी कहीं बाहर जाने अथवा किसी से मिलने के समय ही पहने जाते हैं। घर में पहनने के लिए, चाहे अमीर हो या गरीब, प्रत्येक स्त्री अधिकतर मामूली और कम दाम की ही धोतियाँ पहनती हैं। ऐसी धोतियाँ विविध कांति की रंग विरंगे बोर्डर की होते हुए भी ज्यादातर सफेद ही होती हैं, जिन्हें यदि रँगवा लिया जाये तो बहुत अच्छा हो। रँगने से एक तो कपड़ा सुन्दर लिखने लगता है, दूसरे वह वह मैला बहुत कम होता है, जिस साबुन की बचत होती है। कपड़ा यदि घर पर स्वयं ही रंगा जाये तो और भी अच्छा है।

जो काम अपने हाथ से ठीक, साफ और सन्तोषप्रद होता है, वह दूसरेके हाथ से कभी नहीं हो सकता। ऐसा करने से पैसों की बचत तो होती ही है, साथ में और भी बहुत से लाभ ऐसे हैं जिनसे खुद काम करने की उपयोगिता स्पष्ट मालूम हो जाती है। कम से कम मैं तो अपने बहनों को यही राय दूँगी कि वे अपने कपड़ों को, इच्छा होने पर खुद ही घर पर रँगा करें—बाजारू काम न तो टिकाऊ होते हैं, न सन्तोषप्रद ही। अपनी इच्छुक बहनों के लाभार्थ, मैं यहाँ रँगने की साधारण विधि लिखे देती हूँ—जरूरत पड़ने पर वे उसी के अनुसार अपने कपड़े रँग सकती हैं। रँगों में मुख्य रङ्ग केवल चार हैं—काला, पीला, लाल, और नीला—इन्हीं चार रङ्गों से हर प्रकार के रङ्ग तैयार हो सकते हैं। कौन-सा रङ्ग किस रङ्ग के साथ मिलाने से कैसा रङ्ग बन सकता है, यह नीचे देखो।

पीला रङ्ग—हल्दी, हारसिंगार की डंडी, केसर, पलाश (टेसू के-फूल) और पीली मिट्टी के मेल से तैयार होता है।

लाल रङ्ग—पतंग की लकड़ी, कसूम, आल, शिंगरफ, लाख, गेरू, मेंहदी, मंजीठ, कत्था, महावर आदि से बनता है।

काला रङ्ग—माँजू, कसीस और लोहे से तैयार होता है।

नीला रङ्ग—नील और लाजवर्दी की पुड़िया आदि से तैयार होता है।

यदि रङ्ग उड़ाना हो तो चूना और सज्जी के मेल से उड़ सकता है। अमचूर, नींबू का खट्टा रस, फिटकरी, सुहागा आदि के मेल से रङ्ग और पक्का तथा गहरा हो जाता है। यदि किसी कपड़े का रङ्ग काटना हो, तो किसी धातु के बर्तन में पानी डाल कर कपड़े को खौलावें। पानी कपड़े के ऊपर ही रहे। उसमें थोड़ी-सी पिसी हुई फिटकरी भी ऊपर से डाल दें—सब रङ्ग फटकर पानी में आजावेगा। किन्तु इस तरह केवल कच्चे रङ्ग ही काटे जाते हैं, पक्के रङ्ग नहीं। कच्चा रङ्ग छाया में सुखाया जाता है।

कपड़े में यदि कलप देना हो तो चावल पीस कर या गेहूँ के मैदे को सोलह-गुने पानी में घोल कर एक गसदार (मोटे) कपड़े से छान लें। तदोपरान्त, मन्द-मन्द आँच पर खूब पकने दे—किन्तु ध्यान रहे, बहुत गाढ़ा न हो जाये।

सब्ज या हरा रङ्ग—यदि बनाना हो तो पहले कपड़े को पक्के नील के पानी में डुबकी दें, फिर हल्दी के गर्म जल में थोड़ी देर कपड़े को पड़ा रहने दें और बाद में साफ पानी से धो डालें—फिर फिटकरी के पानी में डुबो कर सुखा दें। कलप देना हो तो उसे भी इसी पानी में घोल कर, कपड़े को उसके बीच से निकाल लें और छाया में सुखा दें।

काही रङ्ग डेढ़ पाव ऋरबेर की जड़ को सवा सेर पानी में रात को भिगो दें, और सुबह औटाकर छान लें। इसमें थोड़ा-सा कसीस पीस कर डाल दें और पानी के साथ घुल जाने पर, उसमें कपड़ा रङ्ग कर सुखा दें।

पीला रङ्ग—हल्दी पीस कर उसमें थोड़ी-सी सज्जी मिला दो, पीछे कपड़े को रङ्ग डालो। बाद, पानी डाल-डाल कर कई बार कपड़े को मलकर धो डालो। जब हल्दी की गन्ध जाती रहे, तो फिटकरी के पानी में डुबो कर सुखा दो।

केसारिया रङ्ग—अनार के छिलके और हरसिंगार के डंठल को औटाकर छान लो। फिर मंजीठ को पानी में औटा कर उसका रङ्ग निकाल लो, और इसे भी छान लो। कपड़े को पहले फिटकरी के जल में डुबाओ, बाद दोनों रङ्गों के पानी को एक में मिलाकर कपड़े को रङ्ग डालो, और कलप आदि देकर छाया में सुखा दो।

शर्बती—तीन भाग हारसिंगार के फूलों का रङ्ग, एक भाग कुसुम का रङ्ग मिलाकर कपड़ा रङ्ग डालो।

गुलाबी—कुसुम की थोड़ी-सा गोंद्क पानी में मिलाकर रँगने से कपड़ा गुलाबी हो जाता है।

लाल—गुलाबी से पाँच गुनी अधिक कुसुम की गोंद देकर रङ्गो, बाद खटाई के पानी में डुबो कर सुखा डालो।

पिस्तई—कपड़े को पहले पक्के नील के पानी में बहुत हल्का रँगो, फिर एक बार हल्दी के पानी में डुबो कर साफ जल में धो डालो। बाद कपड़े को दही के टपकाये हुए पानी में कुछ देर तक तर रहने दो।

जब हल्दी की गन्ध मिट जाये, तब खटाई के पानी में धो डालो। कलप देना हो तो उसे भी खटाई के पानी के साथ ही मिला देना चाहिये।

उन्नाबी—पहले कपड़े को हर्रे के पानी में रँग डालो। बाद, दो, तोला कट के जल में रँगो—फिर छटाँक भर पतङ्ग के औटाये हुए पानी में डुबा कर, दो तोला फिटकरी के पानी में डुबा कर सुखा लो।

सूचना—एक सेर लोहे के चूर्ण को साढ़े सात सेर पानी में डालकर मिट्टी के बर्तन में रख दो। पन्द्रह दिन में पानी काला हो जायेगा, इसी को कटका जल कहते हैं। इसमें रंगा हुआ कपड़ा डुबा कर रखने से, कोई भी रंग जो उसमें पहले लगाया जा चुका है, पक्का हो जाता है।

दुरंगा—सीहु, मूँगे की जड़ तथा सफेद गोंद—इनको बारीक पीसकर गुड़ और पानी के साथ खूब औटावें, बाद खरल करके खूब पीसले, फिर मलमल लेकर उसके एक तरफ इस रंग का लेप करें। जब सूख जाये तो पहले पक्के रँग में कपड़े को डुबा दे, फिर उसे सुखा ले और कच्चे रंग में डुबाले। जैसे नील का रंग पक्का है, इसलिये पहले नील में और फिर कसूम में, क्योंकि कसूम का रंग कच्चा होता है। उससे एक तरफ अबी-रँग और दूसरा ओर जाफरानी-रँग हो जायेगा। पहले नील में रँग कर सुखाने के बाद हल्दी में रँगे, इससे कपड़े के एक ओर पीला और दूसरी ओर हरा रँग हो जायेगा। इसी प्रकार अलग-अलग कई तरह के दुरँगे-रँग तैयार किये जा सकते हैं।

धब्बा छुड़ाने की रीति

खून का दाग—नमक के पानी में धो डालने से खून का धब्बा छूट जाता है।

स्याही—पुराने सिरके को पानी में गर्म करके उसी पानी से कपड़ा धो दो तो स्याही का दाग मिट जायेगा।

नील—ताजा दूध को पानी में गर्म करके धोने से नील का धब्बा छूट जायेगा।

मेंहदी या फलों का दाग—कबूतर की बीट पानी में औटा कर धोने से छूट जाता है।

ऊँट की मेंगनों को पीस कर पानी में घोलो, बाद उसी में चौबीस घन्टे तक कपड़े को पड़ा रहने दो। दूसरे दिन उसे धो डालो, फिर हींग और साबुन के पानी से साफ कर दो। इससे कपड़े पर पड़ा हुआ सब तरफ का दाग छूट जाता है।

कपड़ा रँगने के सम्बंध में खास-खास बातें

सबसे पहली और मुख्य चीज तो एक ऐसा बर्तन, जिसमें कपड़ा रँगा जाये, कुछ बड़ा और चौड़े मुँह का होना बहुत जरूरी है। यदि कपड़ा रँगने के लिये चौड़े और खुले हुए मुँह का बर्तन न लिया गया, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि कपड़ा रँगते समय जगह जगह उसमें धब्बा पड़ जायेगा। बर्तन इतना बड़ा होना चाहिये कि उस में रँगा जाने वाला कपड़ा खुली तरह आ सके; और जितना रंग उसको देना हो, वह रंग भी पानी सहित पर्याप्त मात्रा में आसके—बल्कि थोड़ी-सी जगह छूटी भी रहे तो ठीक है। बर्तन चाहे तांबे का हो, या पीतल का, अथवा टीन या लोहे का—यह अपनी-अपनी इच्छा पर निर्भर है। कोई-कोई तो कपड़े रँगने के लिये मिट्टी की बनी हुई नाँदों का भी प्रयोग करते हैं। भारतीय रंगरेज (कपड़ा रँगने वाले) इस बात की ओर

निक भी ध्यान देना नहीं चाहते, किन्तु पश्चिमीय-देशों के रंगरेज तो
यहाँ तक खयाल रखते हैं कि जिस रंग का कपड़ा रँगना हो, उसी
रङ्ग के बर्तन का भी प्रयोग करते हैं। उन्हें इस बात का पूरा-पूरा
ज्ञान रहता है कि कौन-सा रंग किस धातु के बर्तन में अच्छा चढ़ेगा।
जैसे—काले-रंग के लिये लोहे का, सब्ज या हरे-रंग के लिये ताँबे का,
और सुर्ख या लाल-रंग के लिये पत्थर या मिट्टी का बर्तन काम में
लायेंगे।

बर्तन के अलावा कपड़ा रँगने वालों को निम्न-लिखित चीजें भी
अपने पास रखनी जरूरी हैं।

(१) सिल-बट्टा – रँग की डली आदि पीसने और बारीक करने के
लिये, (२) मूगरी—कपड़ा रँगते समय बर्तन में उसे हिलाने-डुलाने के
लिये, (३) पटरा—जिसके ऊपर रख कर कोई वस्तु कूटी जा सके,
(४) एक लम्बा बाँस—कपड़ा सुखाते समय उतारने और चढ़ाने के
लिये, (५) कुछ अलंगनियाँ—रँगा हुआ कपड़ा टाँग कर सुखाने के लिये,
तथा (६) मक्क कुटी हुई—यह कपड़े को बाँध कर रँग-बिरँगे लहरिये-
दार रँगने के काम आती है।

कलप देना

जब कपड़े पर पक्का रँग चढ़ाना हो, तो पहले उसमें कलप दे
देना चाहिये। कलप देने से कपड़े में रँग को सोखने और उसे कायम
रखने की शक्ति पैदा हो जाती है। भारतवर्ष में अभी तक केवल नीचे
लिखी हुई कलप दिया करते थे; किन्तु विलायत वालों ने सहस्रों

उत्तमोत्तम कलपों का आविष्कार किया है, जो कपड़े के रंग को पक्का करने में बड़ी उत्तम और प्रसिद्ध साबित हो चुकी हैं। यहाँ पर हम कुछ भारतीय-रंगरेजों द्वारा काम में लाने वाली कलपों का उल्लेख करते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—नलपाल, फिटकरी, माँई या सज्जी-चूने का पानी। इनमें से किसी एक चीज को लेकर पानी में घोलें और उसमें कपड़े को खूब गोता देकर ५-६ घण्टे तक पड़ा रहने दें, जिससे उसका असर खूब अच्छी तरह कपड़े में आजाये और वह रंग को सोखने और उसे पक्का करने के योग्य हो जाये, फिर उसे रंग डालें।

लोहे को कलप

काला, या वह रंग जिसमें जरा-सी भी कालिमा हो, रँगने के लिए लोहे की कलप, जिसे कद भी कहते हैं, बड़ी लाभदायक और उत्तम होती है। यह रूई और रेशम पर ज्यादा असर करती है। इसके बनाने की अंग्रेजी तरकीब यह है—एसटेट आफ लाइम या ब्राउन शुगर आफ लेड को जंगार में मिलाकर पानी में खूब अच्छी तरह से सड़ा लो। जब यह भली प्रकार पानी में घुल जाए, तो उसे कपड़े में छानकर निथार लो। बस, यही लोहे की कलप है।

कलई को कलप

यह कलप सर्वोत्तम होने के साथ-साथ सस्ती भी है। रंगरेज लोग इसको 'टिन-क्रिस्टल (कलई के टुकड़े) या 'टिन-साल्ट' (कलई का नमक कहते हैं। जब नमक के तेजाब में कलई की कतरनें, अर्थात् छोटे-छोटे टुकड़े गला लिये जाते हैं, तब यह नमक

न जाता है—किन्तु तेजाब, जिसमें ये टुकड़े गलाये जायें, बिल्कुल शुद्ध और खालिस होना चाहिए। इस तेजाब में लोहे, खिया, गंधक आदि की कोई मिलावट न होनी चाहिये इस तेजाब को आँच दी जाती है। जब कलई गल कर बिल्कुल पानी की तरह हो जाती है, तब ऊपर से तेजाब निथार कर क्रिस्टल अलग कर लिये जाते हैं। ये क्रिस्टल सफेद, चमकीले और रेशम के समान चिकने मालूम होते हैं। एक उत्तम कलप का वजन इस प्रकार है—ग्रेविटी प्रट ७० दर्जे, हेवीएट पफमाइन २ गेलन, गंधक के तेजाब में इतना पानी मिलाओ कि उसका ताप घट कर २८ दर्जे पर आ जाये। बाद ठंडा करके एक गेलन पानी और मिला दो और खूब ठंडा हो जाने दो। ...रीएट आफ टिन में जब गंधक का तेजाब और एग्जलक-एसिड मिला दिया जाता है, तब वह एग्जिएट-टिन बन जाता है। अतः ऊन रंगने के लिये घोल इस प्रकार बनाना चाहिए—पहले एग्जलक-एसिड १ पौंस को एक गेलन पानी में गलाओ जब वह गल जाये, तब उसमें गंधक का तेजाब और एग्जिएट-टिन मिला दो। इससे ऊन और रेशम रंगी जाती है।

केसरी रङ्ग बनाने की विधि

यदि केसर को घोटकर तथा रङ्ग निकाल कर उसमें कपड़े को रङ्गें तो यह असली जाफरानी या केसरी रङ्ग कहा जाता है—किन्तु एक तो ऐसा करने में खर्च अधिक हो जाता है, दूसरे केवल जाफरान में रङ्गा हुआ कपड़ा पहना भी नहीं जा सकता। अतः उनको बनावटी रँग में

रँगना ही ठीक है। एक तोला शहाबा और एक तोला हारसिंगार फूलों का अर्क मिलाकर रँगें।

अथवा—पलाश (केसू के फूलों) का रङ्ग हल्का-सा लेकर शहा[illegible] का रँग मिलालें और उसमें रँगें।

सेंदुरी रङ्ग

५ तोला सेंदूरी को सिले-बट्टे से खूब बारीक पीस लें, फिर ए[illegible] पोटली में बाँध कर थोड़े से पानी में उसे घोलते जाओ। जब तम[illegible] रँग पानी में आ जाये, और पोटली में कुछ न रहे तो उसे अलग र[illegible] कर पहले कपड़े को, मिश्री या बताशों के हल्का-सा शर्बत बना[illegible] उसमें उसे तर करो और थोड़ा-सा हवा लगाकर सिंदूर के बनाये हु[illegible] रंग में डुबो दो। कुछ देर बाद निचोड़ कर सुखा लो।

जोगिया-रङ्ग

सेंदूर या गेरू या कमंजी रँग में हल्का-सा रँग लेने से राग[illegible] अथवा जोगिया रंग बन जाता है।

बसन्ती-रङ्ग

हल्दी का हल्का-सा रंगदें और ऊपर से खटाई अधिक दें, या ह[illegible] सिंगार के फूलों को पानी में भिगोकर तथा गरम करके छान लें, फि[illegible] उसमें रँगें। एक दुपट्टा रँगने के लिये २ तोला हारसिंगार के फू[illegible] काफी हैं।

चम्पई-रङ्ग

चम्पा का फूल भी प्रायः बसन्ती ही होता है। इसलिये इसको

हारसिंगर के फूलों से ही रँगते हैं। थोड़ा सा हल्का सरसों का फूल, तोरा का फूल आदि भी बसन्ती रँग में ही शामिल हैं। इन्हें भी उसी विधि से रँगते हैं।

धानी-रङ्ग

सब्जी-जर्दी अधिक तथा नीलिमा कम होनी चाहिए। अतः कच-नीला कपड़ा रँग कर ऊपर से ४ तोला हल्दी या ३ तोला हारसिंगार के फूलों का गाढ़ा रंग देकर ऊपर से फिटकरी की कलप दे दें।

अंगूरी-रङ्ग

अंगूर के पत्तों जैसा रँग होना चाहिए। पहले नील में बारीक कपड़ा रँग कर ऊपर से हारसिंगार के फूलों का गाढ़ा रँग देकर ऊपर से नास-पाल की हल्की कलप दें। कलप न भी दें तो कोई हर्ज नहीं।

अकाशी-रङ्ग

हल्का नीला रँगने से आसमानी हो जाता है, इसी को कचनीला भी कहते हैं। नील में हल्का गोता दें।

सुनहरी-रंग

नारंगी या सुनहरी रँग के रँगने में प्रायः त्रुटियाँ हो जाया करती हैं। उत्तम रीति तो यह है कि पहले कपड़े को हलका गुलाबी रँग चढ़ा कर ऊपर से गाढ़ा केसरी रँग दे दें। इसके लिये तीन तोला शहाबा और १० तोले केसू के फूलों का रँग काफी है। रँग में कमी-बेशी करना अपनी-अपनी इच्छा पर निर्भर है। जैसा जी चाहे, वैसा बनाकर रँग डालें।

इसके अतिरिक्त बाजारों में पंसारी की दुकान पर हर प्रकार के रँग पाउडर की शक्ल में मिलते हैं। जिस रंग में धोती या अन्य कपड़े रँगना चाहें, वही रँग मँगाकर इच्छानुसार रँगलें। गृहिणी को इसमें अधिक सुविधा है।

रँगना ही ठीक है। एक तोला शहाबा और एक तोल हारसिंगार फूलों का अर्क मिलाकर रँगें।

अथवा—पलाश (केसू के फूलों) का रङ्ग हल्का-सा लेकर शहा का रँग मिलालें और उसमें रँगें।

सेंदुरी रङ्ग

५ तोला सेंदूरी को सिले-बट्टे से खूब बारीक पीस लें, फिर ए पोटली में बाँध कर थोड़े से पानी में उसे घोलते जाओ। जब तम रँग पानी में आ जाये, और पोटली में कुछ न रहे तो उसे अलग र कर पहले कपड़े को, मिश्री या बताशों के हल्का-सा शर्बत बना उसमें उसे तर करो और थोड़ा-सा हवा लगाकर सिंदूर के बनाये ह रंग में डुबो दो। कुछ देर बाद निचोड़ कर सुखा लो।

जोगिया-रङ्ग

सेंदूर या गेरू या कर्मजी रँग में हल्का-सा रँग लेने से रा अथवा जोगिया रंग बन जाता है।

बसन्ती-रङ्ग

हल्दी का हल्का-सा रंगदें और ऊपर से खटाई अधिक दें, या ह सिंगार के फूलों को पानी में भिगोकर तथा गरम करके छान लें, फि उसमें रँगें। एक दुपट्टा रँगने के लिये २ तोला हारसिंगार के फू काफी हैं।

चम्पई-रङ्ग

चम्पा का फूल भी प्रायः बसन्ती ही होता है। इसलिये इसको

न जाता है—किन्तु तेजाब, जिसमें ये टुकड़े गलाये जायें, बिल्कुल शुद्ध और खालिस होना चाहिए। इस तेजाब में लोहे, तूतिया, गंधक आदि की कोई मिलावट न होनी चाहिये इस तेजाब को आँच दी जाती है। जब कलई गल कर बिल्कुल पानी की तरह हो जाती है, तब ऊपर से तेजाब निथार कर क्रिस्टल अलग कर लिये जाते हैं। ये क्रिस्टल सफेद, चमकीले और रेशम के समान चिकने मालूम होते हैं। एक उत्तम कलप का वजन इस प्रकार है—स्पिरिट ७० दर्जे, हेवीएट पफमाइन २ गेलन, गंधक के तेजाब में इतना पानी मिलाओ कि उसका ताप घट कर २८ दर्जे पर आ जाये। बाद ठंडा करके एक गेलन पानी और मिला दो और खूब ठंढा हो जाने दो। क्लोरीएट आफ टिन में जब गंधक का तेजाब और एग्जलक-एसिड मिला दिया जाता है, तब वह एग्जिएट-टिन बन जाता है। अतः ऊन रंगने के लिये घोल इस प्रकार बनाना चाहिए—पहले एग्जलक-एसिड १ औंस को एक गेलन पानी में गलाओ जब वह गल जाये, तब उसमें गंधक का तेजाब और एग्जिएट-टिन मिला दो। इससे ऊन और रेशम रंगी जाती है।

केसरी रङ्ग बनाने की विधि

यदि केसर को घोटकर तथा रङ्ग निकाल कर उसमें कपड़े को रङ्गें तो यह असली जाफरानी या केसरी रङ्ग कहा जाता है—किन्तु एक तो ऐसा करने में खर्च अधिक हो जाता है, दूसरे केवल जाफरान में रङ्गा हुआ कपड़ा पहना भी नहीं जा सकता। अतः उनको बनावटी रँग में

हारसिंगार के फूलों से ही रँगते हैं। थोड़ा सा हल्का सरसों का फूल, तोरा का फूल आदि भी बसन्ती रँग में ही शामिल हैं। इन्हें भी उसी विधि से रँगते हैं।

धानी-रङ्ग

सब्जी-जर्दी अधिक तथा नीलिमा कम होनी चाहिए। अतः कच-नीला कपड़ा रँग कर ऊपर से ४ तोला हल्दी या २ तोला हारसिंगार के फूलों का गाढ़ा रंग देकर ऊपर से फिटकरी की कलप दे दें।

अंगूरी-रङ्ग

अंगूर के पत्तों जैसा रँग होना चाहिए। पहले नील में बारीक कपड़ा रँग कर ऊपर से हारसिंगार के फूलों का गाढ़ा रँग देकर ऊपर से नास-पाल की हल्की कलप दें। कलप न भी दें तो कोई हर्ज नहीं।

अकाशी-रङ्ग

हल्का नीला रँगने से आसमानी हो जाता है, इसी को कचनीला भी कहते हैं। नील में हल्का गोता दें।

सुनहरी-रंग

नारंगी या सुनहरी रँग के रँगने में प्रायः त्रुटियाँ हो जाया करती हैं। उत्तम रीति तो यह है कि पहले कपड़े को हल्का गुलाबी रँग चढ़ा कर ऊपर से गाढ़ा केसरी रँग दे दें। इसके लिये तीन तोला शहावा और १० तोले केसू के फूलों का रँग काफी है। रँग में कमी-बेशी करना अपनी-अपनी इच्छा पर निर्भर है। जैसा जी चाहे, वैसा बनाकर रँग डालें।

इसके अतिरिक्त बाजारों में पंसारी की दुकान पर हर प्रकार के रँग पाउडर की शक्ल में मिलते हैं। जिस रंग में धोती या अन्य कपड़े रँगना चाहें, वही रँग मँगाकर इच्छानुसार रँगलें। गृहिणी को इसमें अधिक सुविधा है।

४

व्यायाम

व्यायाम से फुर्ती है आती, नित्य नियम बाँध कर जो करता।
नस-नस में दौड़े रक्त नया, यह सबल देह को है करता॥
बल बुद्धि साहस और उत्साह, नियमित व्यायाम से है भरता।
कोई करे सामना कैसे जब, निर्बल तो देखते ही डरता॥

शरीर को सुन्दर-सुडौल एवं आकर्षक बनाने के लिए भोजन के बाद व्यायाम तथा अन्य प्रकार के शारीरिक-परिश्रमों का होना बहुत जरूरी है। शिक्षिता-महिलायें अधिकतर शारीरिक-परिश्रम करने से जी चुराती हैं, उन्हें ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताने में विशेष आनन्दानुभूति होती है। ऐश्वर्ययुक्त जीवन स्त्री-पुरुष को आलसी, बेकार तथा निष्कर्मणीय बना देता है। उनका दिमाग ऊँचा उठ जाने के कारण, शिक्षिता महिलायें, घर का काम अपने हाथ से करने में भी लज्जा का अनुभव करने लगती है। वह यह चाहती हैं कि मैं सुख से रहूँ और मेरे घर का काम दास-दसियाँ ही करें—परन्तु वास्तव में उनका यह विचार न केवल भ्रमपूर्ण ही है, बल्कि साथ ही उन्हें गर्त में गिराने वाला भी है।

गृहस्थी का काम-काज करने में स्त्रियों को किसी तरह की लज्जा का अनुभव करने की आवश्यकता नहीं। उनकी गृहस्थी, जिस पर उन्हीं का एकच्छत्र अधिकार है—यदि वे स्वयं उसकी देख भाल न करेंगी, तो और कौन करेगा? नौकरों के भरोसे पर काम छोड़ने से, क्या उन्हीं के गृहस्थी की हानि नहीं? शिक्षिता महिलाओं की यह दूषित मनोवृत्ति ही उनके स्वास्थ्य को गिराने का कारण है। यदि एक ग्रामीण-कन्या के साथ शहर में रहने वाली कालेज कन्या की तुलना की जाये, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि ग्राम्य-कन्या का शारीरिक-गठन और उसका स्वाथ्य कॉलेज-कन्या से लाख बार अच्छा और सन्तोषप्रद है। इसका रहस्य एक मात्र शारीरिक-परिश्रम और शुद्ध वायु का सेवन। ग्राम्य-कन्या अपने गृह में, कोई काम ऐसा नहीं जो अपने हाथ से न करती हो। यहाँ तक कि घर छोड़ कर उन्हें अपने माता-पिता या पति के साथ, खेतों पर भी काम करना पड़ता है। परन्तु स्कूलों और कालिजों में पढ़ने वाली कन्यायें अधिकतर महाराज और महारानियों जैसी जीवन व्यतीत करने में ही अपना शान समझती हैं। दिन भर घर में बैठे रहने से स्त्रियों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और शरीर भी स्थूल (मोटा) हो जाता है, जो कि उन्हें असुन्दर बनाने के लिये काफी है।

शरीर को सुन्दर-सुडौल, स्वास्थ्य कर बनाने के लिए व्यायाम अधिक उपयोगी है। शरीर को तेजोपत्र, कान्तिवान, और सुन्दर बनाने वाला शुद्ध रक्त ही है। रक्त के दो काम हैं—पहला यह, कि वह शरीर की प्रत्येक स्नायु (Tissues) में ओषजन या प्राण-वायु का संचार करता

है, और जो 'सेल' टूट जाते हैं, उन्हें हटा देता है। यदि रक्त अशुद्ध हो, तो ये दोनों प्रक्रियायें बन्द हो जाती हैं। शरीर का प्रमुख अवयव हृदय-रक्त पर ही निर्भर है। इसलिये यदि रक्त में अशुद्धता या विकार उत्पन्न हो जाये, तो सारा शरीर ही रोग-ग्रसित हो जायेगा। हृदय और फेफड़ों का कार्य एक-दूसरे पर निर्भर है यदि हृदय को शक्ति मिले तो फेफड़ों को भी बल मिलेगा। इस ऐसे व्यायाम की सख्त जरूरत है, जिससे हृदय और फेफड़े का कार्य नियमित रूप से होता रहे। यहाँ पर मैं कुछ उपयोगी व्यायाम अपनी बहनों के लिये लिख रही हूँ। स्त्रियों को चाहिये कि वे इन व्यायामों को नियम पूर्वक करें, जिससे उनके देह में सदा फुर्ती बनी रहे।

व्यायाम नं० १—सर्वप्रथम सीधी खड़ी हो जाओ, फिर अपने पाँव चौड़े करके हाथ दोनों चूतड़ों पर रखो। बाद गहरी साँस खींचती हुई पीछे की ओर झुको। ज्यों ही फेफड़े वायु भर जायें, अपने शरीर को आगे की ओर इस प्रकार झुकाओ कि सिर घुटनों के बीच आ जाये। जब तुम नीचे झुक जाओ, तो भीतरी वायु को बाहर निकाल दो और फिर सीधी खड़ी हो जाओ—पुनः इसी प्रकार करो। यही क्रिया बार-म्बार उस समय तक दोहराती रहो, जब तक कि तुम पूरी तरह से थक न जाओ।

व्यायाम नं० २—यह व्यायाम भी पूर्ववत् है परन्तु अन्तर केवल इतना है कि इसमें हाथ सिर के ऊपर रहते हैं। जब नीचे की ओर आगे झुका जाये, तो हाथों को यथा शक्ति पीछे की ओर ले जाना चाहिए। परन्तु हाथ पृथ्वी से छूने नहीं चाहिये।

व्यायाम नं० ३—पैरों को चौड़ा करके खड़े हो जाओ, हाथों को सिर पर इस प्रकार रक्खो कि कोहनियाँ बगलों की ओर रहें। अब शरीर के ऊपरी भाग को दोनों बगलों की ओर झुकाओ। जब बाईं ओर झुकाओ तो साँस खींचो, और जब दाईं ओर झुकाओ तो साँस छोड़ दो। एक ओर कई बार करना चाहिए। जब दस बार यह व्यायाम हो जाये, तो बायीं ओर झुकने पर साँस छोड़नी चाहिए और दायीं ओर झुकने पर साँस लेनी चाहिये। इस व्यायाम से फेफड़े और दिल मजबूत होते हैं, और खून साफ होता है।

व्यायाम नं० ४—दरी या फर्श पर चित लेट जाओ, अपने हाथों को दोनों जाँघों के पास रक्खो। टाँगों को मोड़ो, फिर जँघाओं को मोड़ कर पेट पर झुकाओ। फिर झटके से समस्त अधर-शाखा को सीधा करो। इसी प्रकार दूसरी अधर शाखा को भी करो। फिर दोनों अधः शाखाओं को इकट्ठा मोड़ो और फैलाओ। यही क्रिया बार-बार करते रहो, जब तक कि थक न जाओ।

व्यायाम नं० ५—चित लेट जाओ। दोनों पैरों को सीधा ऊपर उठाओ, फिर दोनों परों को पूर्वावस्था में करो। झटके से काम मत करो। बिना झटके के धीरे-धीरे दोनों पाँव को ऊपर उठाओ और धीरे-धीरे ही नीचे गिरने दो। कई बार इसी तरह करो।

व्यायाम नं० ६—फर्श या जमीन पर चित लेट जाओ। हाथों को सिर के बायें-दायें सीधा फैलाओ। अब तमाम शरीर को सीधा रखते हुए ऊपर उठो, और हाथ से पैरों की अँगुलियाँ पकड़ने की कोशिश करो। जब उठो, तो हाथ सिर के साथ-साथ सामने आने चाहिये। शुरू

वायु में, प्रभात-काल में भ्रमण करना चाहिये। प्रातः काल उपवन, वाटिकाओं, नदी के किनारे टहलना स्वस्थ्य के लिये अत्यन्त लाभदायक है। गर्भवती-स्त्री को ये कसरतें न करनी चाहिए। इनसे गर्भ को हानि पहुंचने की सम्भावना है। जो स्त्रियें नित्य नियम से करती हैं, उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है।

स्नान

स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए स्नान परम आवश्यक है। स्नान करने से चित तो प्रसन्न होता ही है, साथ ही प्रत्येक अङ्ग साफ-सुथरा होने के कारण स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। जहाँ तक हो सके, स्नान शीतल जल से ही करना चाहिए। शीतल जल उत्तेजक और फुर्ती पैदा करता है। यदि शीतल जल से स्नान करते समय त्वचा में गरमी मालूम हो, उसमें लालिमा देख पड़े, चित्त प्रसन्न हो, तो समझना चाहिए कि उसका ताप ठीक है। नहाने के बाद त्वचा में गरमी न आवे तो समझना चाहिए कि उसका ताप ठीक नहीं है। यदि आवश्यकता हो, तो शीतकाल में गर्म जल से स्नान किया जा सकता है। स्नान प्रातःकाल करना चाहिए। मासिक धर्म के समय, जब योनि से रक्त प्रवाहित हो रहा हो, तब स्नान नहीं करना चाहिए, और न शरीर को ठन्ड ही लगने देना चाहिए। स्नान करते समय शरीर के प्रत्येक अङ्ग को जल से धोकर स्वच्छ करना चाहिए, स्त्रियों को किसी एकान्त में या गुप्त स्थान में जहां किसी भी व्यक्ति की दृष्टि न पड़े स्नान करना चाहिए। ऐसे स्थानों में वे समस्त अङ्गों को भली भांति साफ कर सकती हैं। स्नान करने के बाद किसी तौलिया अथवा खुर्दरे

कपड़े से शरीर भलीभाँति रगड़-रगड़ कर पोंछना चाहिए। स्नान करते समय यदि किसी साबुन का प्रयोग किया गया हो, तो ध्यान रखना चाहिए कि उस साबुन में अधिक क्षार तो नहीं था। कपड़े धोने के साबुन से कदापि नहीं नहाना चाहिये, क्योंकि उसमें क्षार अधिक मात्रा में होता है, और वह शरीर में खुश्की और खुजली पैदा कर देता है। कभी-कभी छोटी छोटी फुंसियें भी हो जाती हैं। उससे तो यदि बिना साबुन लगाये ही स्नान कर लिया जाये तो बहुत अच्छा हो। किसी अच्छे कारखाने जैसे 'बंगाल केमिकल' या 'टाटा कम्पनी' के बने हुए तैल और साबुनों का प्रयोग करना अच्छा है। इन से त्वचा साफ, स्वच्छ और कोमल हो जाती है तथा दाम भी अन्य कारखानों से अधिक नहीं हैं।

जननेन्द्रिय की स्वच्छता—बहुत-सी स्त्रियां लज्जावश जननेन्द्रिय की सफाई नहीं करतीं, जबकि इसी की स्वच्छता पर स्त्री का स्वास्थ्य निर्भर है। मुख, दांत और नेत्रों की सफाई जितनी आवश्यक है, उतना ही जननेन्द्रिय की सफाई भी। जननेन्द्रिय की स्थिति शरीर के ऐसे भाग में है, जिसके निकट ही मलाशय का द्वार है। योनि मूत्राशय द्वार और मलाशय-द्वार के मध्य में होती है। इसलिये जब मल-मूत्र त्याग किया जाता है, तब मल-मूत्र के विषैले द्रवों से उसका स्पर्श होता है। वैसे भी योनि से जो स्राव होता है, वह वहां जमा हो जाता है। इससे दुर्गन्धी पैदा होता है, और कभी-कभी खुजली भी होजाती है। भग के आस-पास बाल उग आते हैं, उन्हें भी साफ करना चाहिये। बाल साफ करने के पाउडर या साबुन जो बाजारों में बिकते

हैं, वे हानिकारक हैं, इनमें क्षार अधिक होने के कारण योनि की कोमल त्वचा को हानि पहुंचती है। यदि बाल-साफ करने का उत्तम साबुन मिल जाये, तो उसका प्रयोग करना ठीक है। स्त्री को चाहिये कि वह प्रतिदिन स्नान के समय योनि को साबुन से धोवें और मल-मूत्र के त्याग के बाद भी योनि को जल से धोना ठीक है। मल त्यागने के बाद शौच इस प्रकार करना चाहिये कि अशुद्ध जल या हाथ योनि की ओर न आने पाये, अर्थात् हाथ को आगे से पीछे की ओर ले जाना चाहिये। मासिक-धर्म के समय भी योनि की सफाई का अधिक ध्यान रखना चाहिये। योरोप आदि देशों में महिलायें 'सेनिटरी-टावल' (Sanitary-towels) का प्रयोग करती हैं। जब एक टावल बिगड़ जाता है, तब दूसरा काम में आती हैं। ये टावल पाँच-छः दिनों में डेढ़-दो रुपये के खराब हो जाते हैं। भारतीय स्त्रियों के लिये यह व्यय शक्य नहीं। परन्तु उन्हें चाहिये कि वे शुद्ध, सफेद और कोमल वस्त्र प्रयोग में लावें। गंदे चीथड़े रोग के जन्तुओं को योनि में प्रविष्ट कर देते हैं। योनि के भीतरी भाग को साफ करने के लिये बार-बार 'डूश' का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जब तक कि कोई डाक्टर सलाह न दे, तब तक 'डूश' का प्रयोग कदापि न करना चाहिये।

केशों का सौंदर्य

स्नान करते समय केशों को भी साफ करना चाहिये। केशों की स्वच्छता के लिये कई उपाय हैं, जिनके प्रयोग न केवल केशों के लिये ही, बल्कि मस्तिष्क के लिये भी अत्यन्त लाभदायक हैं।

नं० १—आमला—आँवलों को पीसकर रात्रि में पानी के साथ भिगो देना चाहिये। प्रातः काल इससे बालों को धोया जाये। इससे बाल स्वच्छ, कोमल और चमकीले हो जाते हैं। वे देखने में बड़े सुन्दर लगते हैं।

नं० २—बेसन—इसके प्रयोग से भी केश स्वच्छ हो जाते हैं।

नं० ३—रीठा—इसके छिलकों को रात्रि समय पानी में भिगो दें, और सबेरे उठ कर रीठों को मलें, जिससे उनमें खूब फेन पैदा हो जाये। इससे बाल साफ होकर रेशम की तरह कोमल और चमकीले हो जाते हैं।

नं० ४—मुल्तानी मट्टी—इस मिट्टी का प्रयोग बहुधा गरीब घरों और ग्रामों की स्त्रियाँ करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस मिट्टी से केश बिल्कुल साफ हो जाते हैं। परन्तु यह केशों की जड़ों में जम जाती है और बाल रूक्ष भी हो जाते हैं। अतः जहाँ तक हो सके, केशों को साफ करने के लिये बढ़िया साबुनों का प्रयोग करना ही अधिक श्रेयस्कर है।

केशों को साफ करने तथा नहाने के बाद, किसी तौलिये अथवा गमछे से झटक कर बालों का सारा पानी पोंछ देना चाहिये; और यदि ग्रीष्म-ऋतु (जेष्ट-असाढ़ मास) अथवा बहुत अधिक गर्मी न हो, तब थोड़ी देर धूप में खड़े होकर केशों को सुखा लेना चाहिये—किन्तु धूप में उतनी ही देर रहना चाहिये, जितनी देर कि वह अच्छी लगे। केश जब सूख जायें, तो उनमें तेल डाला जाये। तेल जहाँ तक हो सके, अच्छा ही बर्ता जाये। खराब तेल डालने से, चिकनाई का अंश न होने

के कारण बालों में खुश्की आजाती है और उनका टूटना आरंभ हो जाता है। बाजारों में आजकल जितने भी केश-तेल बिकते हैं, उनमें से अधिकांश 'ह्वाइट आयल' से बने हुए होते हैं। इनके प्रयोग से बाल कमजोर हो जाते और उनकी श्यामलता भी नष्ट हो जाती है। यदि उत्तम नारियल का तेल मिल जाये, तो वह सर्वोत्तम है। नारियल का तेल केशों को श्याम रखता है। अन्य कारखानों की अपेक्षा 'कलकत्ता केमिकल' तथा 'बंगाल केमिकल' और 'टाटा कंपनी' के तेल बहुत अच्छे होते हैं। नारियल के साफ तेलों में गुलाब, चमेली, केवड़ा तथा लेवेण्डर आदि की सुगंध मिली हुई होती है।

केशों को घुँघराले बनाना

घुँघराले केश देखने में बहुत सुंदर लगते हैं। बहुत लोग प्रायः ऐसे ही बाल अधिक पसंद करते हैं। यदि अपने बाल किसी को घुँघराले और चमकदार बनाने हों, तो उन्हें चाहिये कि वे निम्न-लिखित विधि के अनुसार काम करें—

नं० १—सुहागा २ औंस, कीकर या बबूल का गोंद १ ड्राम, गर्म जल १० छटाँक, तीनों चीजों को मिलाकर रख लो। जब ठंडा हो जाये, तो डेढ़ औंस कपूर मिलाकर स्पंज के टुकड़े से अपने बालों में लगाओ। बाल घुँघराले होंगे।

नं० २—मेथी का चूर्ण, मेथी का तेल, बेरी की पत्ती, बोल, माजू, मुर्दासंख और आमा-साचूना—सबको कूट-पीस कर बालों में लेप करे और कम-से-कम दो घन्टे सिरमें लगाकर छोड़ दें। फिर स्नान करके तेल लगा लें।

नं० ३—सोने चाँदी का मैल १ तोला, माजू १ तोला, बिहीदाना १ तोला, बड़ी माई १ तोला, खसके पत्ते १ तोला, कतीरा १ तोला, आँवला १ तोला, मुर्दासिंह १ तोला, मिट्टी १ तोला, चूना ६ मासे—सब को कूट कर चुकंदर के पानी में घोंटकर केशों में लेप करे। इससे बाल घुँघराले, चमकदार, काले और बहुत सुन्दर होते हैं।

बालों का झड़ना

बाल दो कारणों से झड़ते हैं—एक तो शारीरिक रोग के कारण, दूसरे बालों के प्रति असावधानी बर्तने के कारण। शरीर में जब कोई रोग होता है, तो अन्य अवयवों के साथ- साथ केश भी निर्बल हो जाते हैं और वे झड़ने लगते हैं। बालों के प्रति असावधानी रखने से खोपड़ी निर्बल हो जाती है, मैल जम जाता है और निर्जीव केशों की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगती है। यदि शारीरिक-रोग के कारण बाल झड़ते हों, तो पहले उस रोग का इलाज करना चाहिये; और यदि असावधानी के कारण बाल झड़ते हों, तो यह परम आवश्यक है कि पहले उन केशों की सफाई की जाये। बंगाल और महाराष्ट्र आदि प्रान्तों की स्त्रियें अपने बालों को कितना यत्न से रखती हैं, यह बात उनके लम्बे बालों को देख कर ही जानी जा सकती है। केशों का व्यायाम किया जाये (कंघी या ब्रुश से बाल सँवारना ही केशों का व्यायाम है, सिर के निर्बल बालों को निकाल दिया जाये और उनमें अच्छे तेल की मालिश की जाये।

जब बाल झड़ने लगते हैं, तो स्त्रियाँ इस डरके मारे कंघी बहुत कम करती हैं, कि उनके बाल और झड़जायेंगे—किंतु यह उनकी भूल

है। जो बाल निर्बल हो गये हैं, वे सब कंघी करने से ही निकल जायेंगे। प्रतिदिन बालों में तेल मलना, कंघी करना उन्हें सफाई से रखना, यही उनके लिये उत्तम व्यायाम है। स्नान कर तेल लगावें और कंघी से उन्हें सँवार लें।

उचित भोजन और पालन-पोषण पाकर बाल उसी प्रकार सुन्दर बनते हैं, जिस प्रकार उत्तमोत्तम लालन-पालन का प्रबन्ध होने से धनियों के बच्चे अधिकतर सुन्दर एवं हृष्ट-पुष्ट होते हैं। जिन स्त्रियों के बाल असावधानी के कारण अस्त-व्यस्त पड़े रहते हैं, उनके बाल देखने में कितने असुन्दर, गंदे और रूखे-सूखे तथा युवावस्था में ही बुढ़ापे को लाने वाले होते हैं—यह स्वयं ही देखने से मालूम हो जाता है।

जो लोग अपने बालों को बचपन से ही सम्हाल कर रखने की चेष्टा करते हैं, उनके बाल सुन्दर होते हैं। जो उनके प्रति असावधानी करते हैं, उनके बाल खराब हो जाते हैं। जो स्त्रियाँ जितना ही अधिक अपने बालों का पालन-पोषण करती हैं, उनके बाल उतने ही अधिक सुन्दर और आकर्षक होते हैं। इसीलिए बालों के प्रति विशेष सावधानी से काम लेना नितान्त आवश्यक है। बालों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी रखना भी जरूरी है।

बालों में उचित और आवश्यक तेल की मालिश उनको ऊपरी खुराक है। तेल इस प्रकार डालना चाहिये जो बालों की जड़ों में जा कर, वहीं खप जाये। इसके लिये अपने हाथों की अँगुलियों से तेल ले कर, उनमें मलना चाहिये। यह हमेशा याद रखो, कि तेल बालों की

जड़ तक पहुंचना बहुत जरूरी है। सिर्फ बालों के ऊपर तेल चुपड़ कर रह दिखाते फिरना कि हमने भी तेल लगाया है, कोई लाभ नहीं।

ऊपरी खुराक के सिवा बालों को एक और खुराक मिलती है। जिस तरह पौधे ऊपर से खाद और पानी पाते हैं, उसी तरह बालों को भी एक प्राकृतिक-खुराक हमारे शरीर के रक्त से मिला करती है। जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, उनका रक्त शुद्ध और नीरोग होता है। शुद्ध एवं निरोग रक्त से ही बालों को उचित और प्रयाप्त मात्रा में जीवन-तत्व प्राप्त होते हैं। यही कारण है, कि जिनका स्वास्थ्य ठीक होता है उनके बाल भी सुन्दर होते हैं।

बालों को पुष्ट और सुन्दर बनाने के लिए एक प्रकार का व्यायाम भी किया जाता है। यों तो बालों के लिये अन्य कई तरह के व्यायाम हैं, किन्तु सबसे अधिक लाभ उन्हें श्वास-व्यायाम, अर्थात् प्राणायाम करने से होता है। स्थानाभाव के कारण यहाँ प्राणाम की पूरी क्रिया का लिखना तो एक प्रकार से असम्भव ही है, किन्तु फिर भी मैं इतना लिखना जरूरी समझता हूं कि साँस लेने का काम सदा नाक से लेना चाहिए। मुख से साँस लेना हानिकारक है। उससे स्त्रियों के सौन्दर्य को बहुत क्षति पहुंचने की संभावना है—श्वास-व्यायाम में चार क्रियायें होती हैं—

(१) रेचक—श्वास का छोड़ना, (२) कुम्भक—श्वास छोड़कर, उसको रोकना, (३) पूरक-श्वास खींचना, (४) भीतरी कुम्भक—श्वास खींच कर, उसको भीतर रोकना और फिर धीरे-धीरे छोड़ना।

रेचक—श्वास छोड़ते हुए बात का ध्यान रखना चाहिए कि तेजी

के साथ भीतर की वायु न निकल जावे। धीरे-धीरे उसको छोड़ते हुए जब तक भीतर की श्वास बिना किसी कष्ट के निकाली जा सके, निकालते जाना चाहिये।

कुम्भक—पूर्ण रूप से रेचक करके कुम्भक करना चाहिये, अर्थात् वायु को बाहर रोकना चाहिये। परन्तु उतना ही, जितना की जरा भी कष्ट न मालूम हो।

पूरक—कुम्भक के पश्चात् पूरक करके बाहर से वायु को भीतर ले जाना चाहिये। परन्तु तेजी के साथ न खींच कर धीरे-धीरे ही खींचना चाहिये। श्वास खींचते हुए वहाँ तक श्वास खींचती हुई चली जाओ, जहाँ तक फेफड़ों में भर सको।

भीतरी-कुम्भक पूरक के बाद भीतरी-कुम्भक करके वायु को भीतर रोकने की चेष्टा करो; परन्तु उतनी ही देर जितनी देर तक कि रोकने में किसी प्रकार का कष्ट न प्रतीत हो।

श्वास-व्यायाम की, प्रधान रूप से ये ही चार क्रियायें होती हैं। इससे शरीर स्वस्थ्य एवं सुन्दर बनता है। इसको करते हुए इस बात का ध्यान रखने की आवश्यकता है कि किसी भी क्रिया में कष्ट के साथ उसका अभ्यास न करना चाहिये। आसानी से जितना भी अभ्यास बढ़ सके, उतना ही बढ़ाना चाहिये।

किसी ऐसे स्थान में बैठ कर, जहाँ पर खुली हुई वायु चारों ओर से आती हो, यह व्यायाम करना चाहिये। बाग, पार्क, मैदान, पहाड़ी-स्थान अथवा नदी के किनार यह व्यायाम करना बहुत उत्तम और श्रेयस्कर है इस व्यायाम को करते हुए हमको यह अनुभव करना

चाहिये कि हमारा शरीर, हमारा मुख तथा हमारा अङ्ग-प्रतियङ्ग सुन्दर हो रहा है। शीतल वायु के प्राकृतिक-तत्त्व हमारे शरीर में नवयौवन की आभा भर रहे हैं। इसके द्वारा बालों को जो लाभ हो सकता है, उनकी ओर अपने मनोभावों को प्रोत्साहित करना चाहिए। यहाँ हम श्वेत-बालों को काला करने के कुछ उपाय लिखते हैं:—

बालों को काला करने के उपाय—सफेद बालों का काला करने तथा बालों की श्यामलता स्थिर करनेकी बहुत-सी औषधियां हैं। इनमें से कुछ तो खाने की हैं और कुछ बालों में लगाने की। यदि दोनों ही प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया जाये तो बहुत लाभ होगा। खाने वाली औषधी रक्त के साथ मिल कर भीतर से लाभ पहुंचायेगी।

१—काबुली हरड़ की छाल २ तोले ७॥ माशा, चावल २ तोले ७॥ माशा, चीता ८॥ तोला, पंवाड़ के बीज ६ तोला, काला भँगरा १९ तोला, पुराना-कच्चा गुड़ २॥ सेर—सब को कूट-पीस कर, एक में मिला कर २६० गोलियाँ बनावें। इन गोलियों से प्रतिदिन १ गोली लेकर निहार मुँह प्रातःकाल, शौचादि से निवृत्त होने के पूर्व खाना चाहिये।

२—हरड़ का मुरब्बा खाने से बालों की चमक और कालापन स्थिर रहता है।

३—हरड़ की छाल, काला जीरा, हरीत की मूल, शुद्ध भिलावाँ, आँवला, बहेड़ा, सँभालू की छाल, सँभालूके पत्ते, चिरौंजी मालकंगुनी, दालचीनी—प्रत्येक चीज दो-दो तोला लेकर उनका चूर्ण करे। फिर बराबर का पुराना गुड़ मिला कर बड़े बेर के बराबर गोलियाँ बनावें। सुबह एक गोली खाने से बाल काले हो जाते हैं।

...ण्डूर-भस्म, त्रिफला सारिवा बराबर-बराबर लेकर आठ गुना जल में पकावें। जब चौथाई रह जाये, तब छान कर उसमें भँगरे का रस और तिलका तेल मिलाकर पकावें। जब पकते-पकते केवल तेल रह जाये, तब छान कर एक बोतल में रखलें। इसको प्रतिदिन बालों में लगाते रहने से सफेद बाल भी जड़ से काले हो जाते हैं, झड़े हुए बाल पुनः उग आते हैं और बाल बढ़ते भी हैं। बालों में कोमलता, चमक और श्यामलता आ जाती है।

स्तन

छाती का सौंदर्य—स्त्रियों के कुच उन्नत, गोल और सुदृढ़ होने चाहिये। चौड़ी और उभरी हुई छातियें सौन्दर्य की वृद्धि करती हैं। अन्दर को दबी हुई छाती सुन्दर नहीं होती। जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, उनकी छाती भी चौड़ी और सुन्दर होती है। जो स्त्रियें चाहती हैं कि उनकी छाती चौड़ी और उभरी-हुई हो, उन्हें चाहिये कि वे नित्य व्यायाम और प्राणायाम किया करें। शुद्ध वायु में बैठकर नाक से श्वास को खींचें और जितनी देर तक भीतर रोक सकें, रोकें। फिर निकाल दें। इस प्रकार कई बार करें। जोर से गाना और पढ़ना भी छाती को सुन्दर बनाता है। डम्बल और मुद्गर फेरने, नौका चलाने और तैरने से भी छाती चौड़ी होती है। झुक कर चलना, छाती को तंग रखना और उभार कर न चलना बहुत खराब होता है। इससे छातियों की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। छातियों को मोटा करने के लिये प्रतिदिन तेल की मालिश करना चाहिये। मालिश करने से छातियें सख्त हो जाती हैं।

प्रायः देखा जाता है, जिन स्त्रियों के एक भी बच्चा होता है, उनकी छातियें बिगड़ जाती हैं। इसका कारण है केवल उनकी असावधानी। प्रसवकाल में यदि सावधानी रखी जाये, तो छातियाँ नहीं बिगड़ सकतीं। जो स्त्रियाँ चाहती हैं कि उनकी छातियाँ सुन्दर और उभरी हुई रहें—उन्हें 'बाडिस' (अंगिया या चोली) पहननी चाहिये।

माताओं को चाहिए कि वे लेटकर बच्चे को दूध न पिलावें। यदि बच्चे को थोड़ी देर बाद सावधानी से दूध पिलाकर तुरन्त चोली पहन ली जाये, तो छातियाँ अधिक गोल और सुन्दर रहती हैं। कुचों को हाथ से मलने पर भी छातियों की सुन्दरता बिगड़ जाती है। ढलकी हुई छातियाँ बड़ी भद्दी मालूम देती हैं। छोटी छातियें भी सुन्दर नहीं कही जा सकतीं। यहाँ पर कुछ ऐसी औषधियों का वर्णन किया जाता है, जिन से बिगड़ी हुई छातियें सुधर सकती हैं। औषधियों का प्रयोग सदा एकान्त स्थान में होना चाहिये।

ढीली छातियों को कड़ी बनाने का उपाय—

नं० १—भैंस का दूध ५ तोला, निर्वंशी ५ तोला, पानी १० तोला, तिल का तेल १० तोला सबको मिलाकर मन्दाग्नि में पकावें। जब पानी का अंश बिल्कुल जल जाये और केवल तेल रह जाये तब छानकर रख ले। फिर प्रतिदिन एक कटोरी में लेकर थोड़ा गर्म करके छातियों पर मालिश करें और एक कपड़े से बाँध दें, फिर दूसरे दिन खोल डालें।

नं० २—सफेद जीरे को सिरके में पीसकर छातियों पर लेप करें और कपड़े से बाँध दें।

नं० ३—मैनफल ३ माशे, हींग २ माशे, कूट पीस कर पानी में घोलकर छातियों पर लेप करें और बाँध दें।

छोटी छातियों को बड़ी करना—

१—पहले छातियों को खूब मले। जब-जब मलते-मलते वे लाल हो जायें, तो भैंस का दूध, जो बासी होने से गाढ़ा और दुर्गन्धयुक्त हो गया हो—उसको छातियों पर मलकर उतार दे। इस प्रकार दिन में दो बार करे।

२—मरी हुई जोंक लेकर, जिस नारियल में पानी हो, उसमें डाल दो। जब पानी सूख जाये तब जोंक को निकाल कर पीस डाले। इसके बाद छातियों पर उसका लेप करे—इससे छातियें बड़ी और मोटी होंगी।

छातियों को ढीली होने से रोकने का उपाय—

गेरू; माजू पीसकर शहद में मिलाकर छातियों पर लेप करें और फिर ठण्डे पानी से धो डालें। यह एक महीने में तीन बार करना चाहिये। ऐसा करने से ढीली होती हुई छातियें रुक जाती हैं और उनमें कठोरता आ जाती है।

दांतों की सुन्दरता—

दांतों का सौन्दर्य, उनके सुडौलपन, चमक और सफेदी पर निर्भर है। दाँत बहुत बड़े, बहुत छोटे, छिद्रे अथवा एक-दूसरे पर चढ़े हुए सुन्दर नहीं होते। बात करते और हंसते समय दांत बहुत कम दिखने चाहिये। दाँत जितने ही सफेद और चमकदार होंगे, उतने ही सुन्दर होंगे। बहुत-सी स्त्रियाँ दाँतों को सुन्दर बनाने के लिये उनमें सोने की

कीलें आदि जड़वा लेती हैं तथा कोई-कोई काले और लाल रंगों से भी रँग लेती हैं, किन्तु इन उपायों से दाँत कभी सुन्दर नहीं लगते। उनकी असली सुन्दरता तो सफेद और चमकदार होने में ही है। दाँतों का सम्बन्ध जिस प्रकार सुन्दरता से है, उसी प्रकार स्वास्थ्य से भी है। स्वास्थ्य खराब होने अथवा पेट में किसी तरह की गड़बड़ी होने के कारण दाँत खराब होजाते हैं। निर्बल आमाशय से भी दांतों पर बहुत बुरा असर पड़ता है। जो लोग माँस, मदिरा, पान, सुपारी, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि का सेवन करते हैं, उनके दाँत भी जल्दी ही खराब हो जाते हैं। मद्य की चीजें खाने से भी दाँत खराब हो जाते हैं। जो स्त्रियाँ अपने दाँतों को सुन्दर रखना चाहती हैं, उन्हें चाहिये कि वे अपने दाँतों को सदा स्वच्छ रक्खें। भोजन सीधा-सादा और पाचक करें—फल और शाक-सब्जियों का अधिक सेवन करें। मादक वस्तुओं से बचें।

नित्य प्रति दाँतों को दो बार कुछ समय तक साफ करना चाहिये। यदि दो बार न कर सकें तो एक बार प्रातःकाल ही किसी अच्छे दन्त-मंजन से अपने दाँत भली भाँति साफ करें। इसके अलावा भोजन के बाद या और कोई भी चीज खाने के बाद अंगुली से अपने दाँतों को अच्छी तरह साफ कर लिया करें। यदि कोई चीज दाँतों में फँसी रह जायेगी तो उसमें दुर्गन्ध पैदा हो जायेगी।

अच्छा दन्त-मंजन बनाने की विधि यह है—सेंधा नमक, कपूर, सफेद सुरमा, फिटकरी की खील—सबको बारीक पीसकर बराबर-

बराबर मिला लो और शीशी में भरकर रख लो। यह मंजन बहुत अच्छा होगा। इसको प्रतिदिन अंगुली से दाँतों पर मलें। इससे दाँत खूब साफ होते हैं और यदि कोई दाँतों में रोग हो तो वह भी दूर हो जाता है।

५

शृंगार और सौंदर्य

शृङ्गार से बढ़ती सुन्दरता, सौंदर्य बना शृङ्गारों से।
जो कंचन-कामिनी में डूब गया, वह खेल रहा अंगारों से॥
संसार में रह कर क्यों भूला, यह माया आनी-जानी है।
पैदा जो हुआ नापैद है वह, यह दुनिया ही बहता पानी है॥

शृङ्गार स्त्री के लिये और स्त्री शृङ्गार के लिये है। स्त्रियों में शृङ्गार करने की रुचि बहुत पुरानी है। जिस प्रकार प्रकृति ने स्त्री को संसार की शोभा बनाया है, उसी प्रकार शृङ्गार भी स्त्री की शोभा है। नारी और शृङ्गार—इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बंध है। न नारी ही शृङ्गार के बिना रह सकती है। और न शृङ्गार ही नारी के बिना शोभा पा सकता है। जब हमारा देश बहुत समुन्नत अवस्था में था, हमारी मातायें बहुत ही उत्तम और शुद्ध-विचारों को लेकर जन्म ग्रहण करती थीं। अपने उन पवित्र एवं उत्तम विचारों के कारण ही वे संसार में अपना मस्तक उच्च किये हुए निर्मल, स्वच्छ और आदर्श-जीवन व्यतीत

करती थीं। वे यद्यपि आज हमारे बीच में नहीं हैं, किन्तु उनकी पुण्य-स्मृति—उनका छोड़ा हुआ प्रशस्त आदर्श-मार्ग, आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन करने को हमारे समक्ष उपस्थित है। वे जीवन-भर किस पवित्रता का पालन करतीं थीं—यह बात पौराणिक-कथाओं के अवलोकन से स्पष्ट हो जाती है। स्त्रियों में शृङ्गार उस समय भी था और आज भी है—किन्तु उस समय के शृङ्गार में और आज के शृङ्गार में आकाश-पाताल का अन्तर है। तब के शृङ्गार में प्राकृतिक-ढंगों का समावेश अधिक होने के कारण निर्दोष तथा पवित्र होता था, जबकि आज के शृङ्गार में कृत्रिम साधनों का प्रयोग अधिक होने के कारण, इस में दोष और अपवित्रता ही भरी हुई रहती है। स्त्री, स्वयं एक शृङ्गार है—किन्तु बाह्य-शृङ्गार से वह मानो और भी खिल उठती है।

प्राचीन काल से लेकर अब तक सैकड़ों-हज़ारों प्रकार के शृङ्गार पाये जाते हैं। बीसवीं शताब्दी की शिक्षिता-महिलाओं ने प्राचीन-काल के बहुत-से शृङ्गारों को अनावश्यक और अनुचित समझ कर उनका प्रयोग करना ही छोड़ दिया है। ऐसी दशा में यह निर्णय करना कि कौन-सा शृङ्गार उत्तम है और कौन-सा ख़राब, यह अत्यन्त कठिन है। क्योंकि जिस युग में जिन बातों का प्रचलन अधिक होता है, उस युग में उन्हीं बातों को महत्त्व दिया जाता है। इसी प्रकार जिस देश और समाज में शृङ्गार की जिन बातों का प्रचार होता है, उस देश और उस समाज में उन्हीं बातों का आदर अधिक किया जाता है। आजकल हमारे देश में पाश्चात्य-ढंग के शृङ्गारों की नकल अधिक होती है।

वर्तमान-युग में, जब कि स्त्री-शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों की

स्वाधीनता की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, यह परमावश्यक है कि स्त्रियों को अपने दायित्व का पूरा-पूरा ज्ञान हो, और वे अपने भीतर से उन तमाम त्रुटियों को दूर करने की चेष्टा करें, जिनके कारण कि उनके निर्मल चरित्र पर कलङ्क का धब्बा लगता हो। प्रायः अर्द्ध-शिक्षिता और अधिकांश रूप में अशिक्षिता स्त्रियें सौंदर्य-वृद्धि के ख्याल से ऐसी-ऐसी बाजारू वस्तुओं का प्रयोग करती हैं, जिनसे लाभ होने की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। यहाँ मैं कुछ ऐसी चीजों का उल्लेख करती हूँ जिनसे शृङ्गार-वृद्धि तो अवश्य होती है, किन्तु उनसे त्वचा को बहुत हानि पहुँचती है।

लिप-स्टिक—अर्थात् होंट लाल करना। शृङ्गार में यह भी एक विशेष क्रिया है। स्त्रियाँ अपने सौंदर्य को बढ़ाने के लिये होंठों को लाल कर लेती हैं। होठों को लाल करने के लिये बाजारों में तरह-तरह की चीजें बिकती हैं। कोई-कोई स्त्री होंठ लाल करने के लिये पान खाती है और कोई गुलाबी कागज ही होठों पर मल लेती है। पंजाब की स्त्रियाँ अधिकतर दँदासा (अखरोट की छाल दाँतों पर मलती हैं, इससे दाँत तो साफ होते ही हैं—साथ ही होंठ भी हल्के-लाल-रंग के हो जाते हैं। बाजार में भी ऐसी बहुत-सी चीजें पाई जाती हैं, जिनको लगाने से होंठ लाल या गुलाबी रंग के हो जाते हैं। यह शीशियाँ सस्ती और महँगी कई तरह की मिलती हैं। जो स्त्रियाँ पैसों के लालच में सस्ते गुलाब रंग बाजारों से लाकर उनका प्रयोग करती हैं—उनके होंठ खराब हो जाते हैं, त्वचा पर या तो पपड़ी जम जाती है, अथवा फट कर उसमें रुक्षता आ जाती है। इसलिये यदि ऐसे रंगों का प्रयोग किया

भी जाये, तो बढ़िया मेल की खरीद कर उनका प्रयोग करना चाहिये, जिससे होठों को किसी तरह की हानि न पहुंचे। लिपस्टिक सदा देख भाल कर उत्तम से उत्तम लेनी चाहिये। मुख की सुन्दरता बढ़ाने में होठों का विशेष स्थान है; अतः इन्हें ठीक रखने के लिये सदैव प्रयत्न-शील रहना चाहिये।

पाऊडर लगाना—विदेशी स्त्रियाँ शृङ्गार के लिये सफेद-गुलाबी मुँह में लगाने के पाऊडरों का बहुत प्रयोग करती हैं। हमारे देश की शिक्षिता स्त्रियों में भी आजकल इन पाऊडरों का प्रयोग खूब बढ़ गया है। पाउडर भी कई तरह के होते हैं। कुछ पाउडर जो घटिया मेल के होते हैं, उनके लगाने से त्वचा खराब हो जाती है। इसलिये यदि पाउडरों का प्रयोग करना जरूरी हो, तो जहाँ तक हो सके अच्छे पाउडरों का प्रयोग करना चाहिये। सस्ते पाउडरों में चूने का अंश अधिक होने के कारण वह त्वचा को रुक्ष बनाकर फाड़ डालता है। श्रेष्ठ पाउडरों में 'क्युटिकुरा-पाउडर' 'कालगेट-पाउडर' तथा 'हिमालय-बोकेट' आदि होते हैं।

सुहाग-बिन्दी—यह बिन्दी हिन्दू-स्त्रियाँ माथे में लगाती हैं। अधिकतर सिंदूर का टीका सुहाग के लिये ही लगाया जाता है। गर्मी के दिनों में पसीना आ जाने से सिंदूर या तो बह जाता है या माथे के चारों ओर फैल जाता है। इसलिये बाजारों में रँग-बिरंगी कई तरह की बिन्दियें भी मिलती हैं, जो सिन्दूर के बदले माथे में लगाई जाती हैं। कुछ स्त्रियाँ गीले सिंदूर की शीशियाँ बाजार से मँगाकर उसका टीका माथे में लगाती हैं, और कुछ सूखा हुआ सिन्दूर अँगुली की नोक से

गोल बिंदी सी लगाती हैं। माथे की बिंदी, स्त्रियों का सुहाग-चिन्ह भी है और शृङ्गार भी। प्रत्येक स्त्री को माथे पर बिंदी अवश्य लगानी चाहिये।

माँग भरना—विवाहिता और सधवा स्त्रियें अपनी माँग को सिंदूर से भरती हैं। हिन्दुओं में यह सुहाग का चिन्ह माना जाता है, इसलिये केवल वे ही स्त्रियाँ माँग भरती हैं जो सधवा होती हैं। आजकल की पढ़ी लिखी स्त्रियाँ माँग में सिंदूर भरना बहुत कम पसन्द करती हैं। बहुत कम स्त्रियाँ ऐसी हैं जो शिक्षिता होने पर भी माँग भरती हैं। माँग भरना सधवा और विवाहिता स्त्रियों का शृङ्गार है। यदि ढँग से और उत्तम रीति से माँग भरी जाये तो यह बहुत अच्छा लगता है। इससे बालों की शोभा बढ़ती है किन्तु अशिक्षिता-स्त्रियें जिस प्रकार लापरवाही से घी में सना हुआ सिंदूर अपनी माँग में थोप लेती हैं, यह बहुत भद्दा लगता है। बालों को ठीक से सँवार लेने के बाद किसी पतली सींक या कंघी के पकड़ने वाले स्थान पर सिंदूर लगा कर माथे के ठीक बीचों बीच बालों में सिंदूर भरा जाये, तो माँग बहुत सुन्दर लगती है। कुछ स्त्रियें माँग पूरा भरना पसन्द करती हैं और कुछ आधी ही भर कर छोड़ देती हैं।

मेंहदी लगाना—हाथ-पाँव की अंगुलियों और नाखुनों में मेंहदी रचाना भी एक शृङ्गार है। इसे हर समय और हर ऋतु में नहीं लगाया जाता। यह प्रायः आसाढ़, सावन मास में लगाई जाती है। यह ठंडी होती है। हाथ-पाँव के तलवों में लगाने से वे लाल और सुन्दर तो होते ही हैं, साथ में मस्तक को ठंडक भी पहुँचाती है। मेंहदी लगाने से

हानि तो कुछ नहीं, लाभ ही अधिक प्रतीत होते हैं।

महावर लगाना—बंगाल तथा संयुक्त-प्रान्त की हिन्दू स्त्रियें अपने पाँवों में एक तरह का रंग लगाती हैं, जिसे युक्त प्रान्त में महावर तथा बंगाल में आलता कहते हैं। कुमारी कन्यायें तथा सधवा स्त्रियें ही अपने पैरों में महावर लगाती हैं। इसके लगाने से पैर सुन्दर तो जरूर लगते हैं, किन्तु इससे पैर फटने शुरू हो जाते हैं; और कुछ दिनों बाद उनसे पाँव सुन्दर होने की अपेक्षा असुन्दर ही अधिक हो जाते हैं।

वस्त्रों का प्रयोग

जिस प्रकार स्त्रियों का शृङ्गार उनके सौंदर्य को बढ़ाता है और इसके लिये उन्हें कई तरह की रँग-बिरँगी वस्तुओं की जरूरत पड़ती है; इसी प्रकार उनके अंगों को ढँकने के लिये सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों की भी सख्त जरूरत होती है। यह माना कि वस्त्रों का मूल उद्देश्य शरीर को ढँकने और उसकी रक्षा करने का है, किन्तु वर्तमान-युग में उनके धारण करने का ढँग देख कर कोई भी मनुष्य यह कहने में तनिक भी संकोच न करेगा, कि वस्त्र पहनने का उद्देश्य न केवल शरीर को ढाँकना ही है, बल्कि उसके धारण करने से प्रत्येक स्त्री अपनी इच्छानुसार अपने सौंदर्य की वृद्धि कर सकती है। सुन्दर, उपयोगी तथा आकर्षक वस्त्रों का प्रयोग हमारे लिये उतना ही आवश्यक है, जितना कि बल बुद्धि संचय करने के लिये भोजन का ग्रहण करना। सुन्दर वस्त्र सुन्दरता-प्राप्ति के साधन हैं, यह सभी लोग जानते हैं। वस्त्रों के सौंदर्य का ज्ञान बड़े आदमियों और पैसे-वालों को ही होता है, ऐसी बात नहीं। गरीबों की स्त्रियाँ दीन और दरिद्र होते हुए भी वस्त्रों द्वारा अपना

सौंदर्य बढ़ाने की चेष्टा करती हैं। सुन्दरता के लिये वस्त्रों का उपयोग हमारे देश में ही नहीं—बल्कि कहना तो यह चाहिये कि अन्य देशों की स्त्रियों में इसका शौक कहीं अधिक पाया जाता है। भिन्न-भिन्न देशों की स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्र पहनती हैं—यद्यपि इन वस्त्रों के पहनने का उद्देश्य एक ही है; और वह है शरीर रक्षा के साथ-साथ सौंदर्य-वृद्धि करना।

विदेशी स्त्रियों में भी अनेक प्रकार के वस्त्रों का प्रचलन है। आज के पचास वर्ष पूर्व विदेशी स्त्रियों के वस्त्र कुछ और थे, और आज कुछ और हैं। इसी आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि आगामी पचास वर्ष के बाद उनके वस्त्र कुछ और ही होंगे। इसलिये यहाँ पर उनके भिन्न-भिन्न वस्त्रों की टीका-टिप्पणी नहीं की जा सकती। केवल इतना ही बता देना काफी होगा कि वहाँ की स्त्रियों ने वस्त्रों को पहन कर, जिस प्रकार सुन्दर बनने का प्रयत्न किया है, वह अभी हमारे देश में बहुत दूर है।

विदेशी-महिलाओं में भी दो प्रकार की श्रेणियें हैं। एक प्रकार की श्रेणी अब भी ऐसी पाई जाती है, जिनके वस्त्र कुछ वहाँ के प्राचीन काल के वस्त्रों से मिलते-जुलते हैं। परन्तु दूसरी श्रेणी जो स्त्रियों की है, वह वस्त्रादि के सम्बन्ध में बहुत उन्नत है। उनके वस्त्र नित्य नये प्रकार के बनते हैं। उनके शरीर का सौंदर्य, जिस प्रकार के वस्त्र से बढ़ सकता है, उसी का पहनना, उनका उद्देश्य है। विदेशी महिलाओं ने वस्त्रों के सम्बन्ध में बड़ी क्रान्ति की है। दकियानूसी आदमी चाहे उनकी बातों का समर्थन भूल से भी न करे, परन्तु यह बात तो स्वीकार

करनी ही पड़ेगी कि, उनके वस्त्र ही उन्हें सुन्दर और स्वस्थ बनाने वाले होते हैं।

नये और पुराने—प्राचीन-काल में स्त्रियाँ जैसे वस्त्र पहना करती थीं, उनकी आजकल बहुत कम प्रथा है। इस वर्तमान-युग में स्त्रियाँ तरह-तरह के वस्त्रों को पहन कर अपने सौन्दर्य की वृद्धि करती हैं। शिक्षिता महिलायें विभिन्न स्टाइल और विविध रंगों तथा आकार-प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग करती हैं। आजकल साड़ी और धोती पहनने का तो आम रिवाज हो गया है; किन्तु पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ साड़ी या धोती के नीचे पेटीकोट या शेमीज—और फिर उसके नीचे अंडर-वियर अथवा जाँघिया पहनती हैं साड़ी पहनने का ढंग उनका ऐसा सुन्दर और आकर्षक होता है, कि देखने में बहुत लुभावनी मालूम होती हैं। पहले यहाँ की स्त्रियों में लहंगे पहनने का बहुत रिवाज था। स्त्रियाँ घेरदार लहंगे (दामन) पहना करतीं तथा सिर पर ओढ़ना या दुपट्टा ओढ़ा करती थीं और अंगिया या चोली से अपने शरीर को ढाँपा करती थीं। इन कपड़ों का रिवाज शनैः शनैः कम होता हुआ आज-कल बिल्कुल नहीं के बराबर हो गया है। शहरों की अपेक्षा गाँवों में अभी भी प्राचीनता के चिन्ह अधिक-मात्रा में पाये जाते हैं। ग्राम्य-स्त्रियाँ लहंगा आदि का अभी तक प्रयोग करती हैं।

आज-कल की स्त्रियाँ चोली आदि का प्रयोग बिल्कुल नहीं करतीं। उसकी जगह वे जम्पर, ब्लाऊज, जाकेट, बनियान, बाडी आदि पहनती हैं। चोली और अंगिया का प्रयोग अधिकतर मद्रास, गुजरात और मारवाड़ की स्त्रियाँ करती हैं। पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ चोली आदि का

पहनना पसन्द नहीं करतीं; किन्तु यह उनकी भूल है। यदि वे चोली और अंगिया का प्रयोग सदा करती रहें, तो इससे उनको बड़ा लाभ पहुँच सकता है। छातियों को, सुन्दर, गोल और सुगठित रखने के लिये चोली या अंगिया बड़ा काम करती है। चोली से केवल छातियाँ ही ढकती हैं। पेट, पीठ और नाभि आदि सब खुले रहते हैं, किन्तु यदि चोली के ऊपर कोई जम्पर या कमीज आदि पहन ली जावे, तो बहुत अच्छा हो।

स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता को बढ़ाने के लिये कामदार, फूल-बूटेदार, रेशमी, तड़क-भड़कदार कपड़े अनेक प्रकार से सा-कर पहनती हैं। किन्तु हरएक स्त्री के शरीर पर सब प्रकार के कपड़े नहीं खिलते, और इसका भी एक कारण है, वह यह कि ऐसी स्त्रियों को सुन्दरता का सच्चा ज्ञान नहीं है। वे यह नहीं समझतीं कि कपड़े केवल सुन्दरता की वृद्धि करते हैं, वे किसी को सुन्दर नहीं बनाते। यदि कोई स्त्री खूब स्वस्थ है तो उसकी देह पर सभी प्रकार के कपड़े सुन्दर लगेंगे— और यदि कोई स्त्री दुबली-पतली और अस्वस्थ है तो उसकी देह पर कीमती और उत्तमोत्तम वस्त्र भी बहुत भद्दे लगेंगे। एक ही तरह का कपड़ा किसी को भी रोज रोज ठीक न लगेगा। किसी की देह पर जम्पर खिलता है, किसी के कमीज; किसी के साड़ी और किसी के जाकेट। इसलिये इस बात का खूब ध्यान रखना चाहिए कि जो कपड़ा जिसके शरीर पर सुन्दर लगे, वही वह पहने। अपने शरीर के अनुकूल वस्त्र पहनने से ही सुन्दरता बढ़ती है।

यदि किसी स्त्री की देह पर जम्पर भद्दा लगता है तो उसको

चाहिये, कि वह जम्पर न पहने। जो स्त्रियाँ इन बातों का ध्यान नहीं रखतीं और बिना सोचे समझे ही कपड़ों का प्रयोग करने लगतीं हैं, वे बजाय सुन्दर लगने के असुन्दर दिखाई देती हैं। स्वस्थ स्त्री की देह पर तो सभी प्रकार के वस्त्र भव जाते हैं और इसी कारण वह अधिक सुन्दरी भी दिखाई देती हैं। शरीर की सुन्दरता बढ़ाने के लिये सदैव ऐसे वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिये, जो शरीर पर फिट बैठें न अधिक ढीले हों, न चुस्त हों। इसके अतिरिक्त, जिस प्रकार का कपड़ा जिसके शरीर पर सुन्दर लगे, वही उसको पहनना चाहिये। वास्तव में स्त्रियों के वस्त्र बहुत सादे होने चाहिये। पंजाब, सिन्ध आदि प्रान्तों में हिन्दू महिलायें सलवार, कुरता और ओढ़नी ही अधिक पहनती हैं। इन प्रांतों के सिवा—युक्त प्रांत, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, गुजरात, मध्य प्रांत तथा मद्रास आदि प्रांतों में स्त्रियां अधिकतर साड़ी या धोती और जम्पर या ब्लाऊज ही पहनती हैं और यही उनको अच्छे लगते हैं। उनके पहनने का ढंग भी कहीं अधिक सुन्दर और आकर्षक होता है।

प्राचीनता का आदर करने वाली स्त्रियाँ इस नूतन युग में भी लहंगे और ओढ़नी का मोह नहीं त्यागना चाहतीं, इनके लिये न तो हम उन स्त्रियों को मूर्ख ही कहेंगे और न पागल ही। क्योंकि प्राचीनता के चिन्ह, केवल प्राचीन होने के कारण ही सर्वथा त्याज्य नहीं होने चाहिये। किन्तु यह हम अवश्य कहेंगे कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ हमें स्वयं भी अपने-आपको बदल डालना चाहिये। स्पष्ट है कि जैसे-जैसे स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार बढ़ता जा रहा है, वैसे वैसे वे साड़ी को अपनाती जा रही हैं। निःसन्देह स्त्री के लिये साड़ी ही सर्वो-

सम परिधान (पोशाक) है। योरोपियन, अमेरिकन और मुस्लिम स्त्रियाँ भी आजकल साड़ी पहनने लगी हैं। साड़ी सबसे अधिक लोकप्रिय पोशाक है। पारसी महिलायें तो इस विषय में इतना आगे बढ़ी हुई हैं, कि वे साड़ी की नवीन-नवीन 'डिजाइनें' निकालने में फ्रांस की सुन्दरियों के फैशन को भी मात करती हैं। शुरू-शुरू में 'बनारसी-साड़ियों' का अधिक प्रचार था। धनी लोग अपनी स्त्रियों के लिये 'बनारसी-साड़ियां' खरीदा करते थे। इन साड़ियों की पूरी जमीन और किनारी रूपहले और सुनहरा गोटे के बेल-बूटों से चित्रित होती है। परन्तु अब स्त्रियाँ इसे कम पसन्द करती हैं। जार्जेट तथा क्रेप का चलन अधिक है। साड़ी, जम्पर, चोली, पेटीकोट—बस, यही स्त्री की सामान्य पोशाक है। कितनी कम, कितनी सादा, सस्ती परन्तु सुन्दर हाँ, सस्ता और सुन्दर हो सकती है अवश्य—पर यदि स्त्रियें इसके लिये सच्चे मन से प्रयत्न करें। यों मूल्यवान बनाने को तो फिर स्त्रियों की पोशाक का कोई ठिकाना ही नहीं। एक-एक साड़ी और ब्लाऊज के लिये हजार-पाँच सौ रुपया खर्च कर देना भी मामूली बात है। कितना दुःख और आश्चर्य होता है उस समय जब स्त्रियाँ अपने पति की अवस्था जानती हुई भी, किसी ऐसी चीज के लिये हठ कर बैठती हैं, जिसे खरीद कर लाना वास्तव में उनकी शक्ति के बाहर होता है। अधिकतर ऐसा वे ही स्त्रियाँ करती हैं, जिन्हें या तो अपने पति से सच्चा प्रेम नहीं होता अथवा उसके घर को वे अपना घर न समझती हों, किसी भी गृहस्थ की ऐसी स्थिति वास्तव में बड़ी शोचनीय होती है।

जब स्त्री ही अपने पति-गृह की एक मात्र अधीश्वरी, गृहिणी या स्वामिनी है—और अपने पति की आय-व्यय का वह पूरा-पूरा ज्ञान रखती है, तो ऐसी दशा में किसी ऐसी वस्तु के लिये हठ करना, जिस को लाने में पति सर्वथा असमर्थ हो—नितान्त मूर्खता और पागलपन है। पति तो स्वयं ही अपना प्रेम दर्शाने के लिये नित्य नई-नई चीजें लाकर अपनी पत्नी को प्रसन्न करने की चेष्टा करता है—वह कोई ऐसा काम, जो उसकी प्रियतमा को अरुचिकर हो, करना पसंद नहीं करता। आदर्श पति सब तरह से अपनी पत्नी को सुखी ही देखना चाहता है, उसे अपनी पत्नी के शृङ्गार तथा उसके खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने की स्वयं ही हर समय चिन्ता रहती है—फिर ऐसी दशा में क्या पत्नी के लिये यह उचित होगा कि वह अपनी शौक की चीजों के लिये व्यर्थ ही हठ करके अपने पति को परेशानी में डाले? पति—कैसे दो पैसे कमाये, कैसे वह अपनी उन्नति करे—सदा इन्हीं चिन्ताओं में डूबा रहता। घरमें आने पर यदि पत्नी भी उसे अपने शृङ्गार की वस्तुओं को लाने के लिये तंग करने लगे, तो यह उस पति के लिये क्या एक नई मुसीबत न होगी?

आभूषणों का शौक

स्त्रियों को कपड़ों के साथ-साथ गहने आदि पहनने का भी बहुत शौक होता है। आभूषण पहनने से स्त्रियों की सौंदर्य वृद्धि होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु भद्दे, मोटे, अनावश्यक और अनगढ़ गहनों के पहनने से कोई लाभ नहीं। सच्चा सौंदर्य तो स्वस्थ देह और शील-स्वभाव में है, परन्तु शृङ्गार से शरीर आकर्षक बन जाता है। इस

लिये इसका होना भी जरूरी है। किंतु शृङ्गार ऐसा होना चाहिये कि जो स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद न हो और साथ ही देखने में भद्दा भी न लगे। स्त्रियाँ—विशेषकर अशिक्षिता स्त्रियाँ अनावश्यक और भद्दे आभूषणों से अपने शरीर को और भी कुरूप और असुन्दर बना लेती हैं।

शील ही नारी का सच्चा भूषण है! आजकल अशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित महिलाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के आभूषण धारण करने का रिवाज बढ़ता जा रहा है। इन आभूषणों के लिये कभी-कभी घरमें लड़ाई-झगड़ा तक हो जाता है। आज किसी स्त्री ने दूसरी स्त्री के पास कोई नवीन ढंग का आभूषण देखा, वैसा ही आभूषण वह अपने लिये भी बनवाने की माँग पेश करती है। यदि अभाग्यवश उसका पति उसकी माँग पूरी नहीं कर सकता—तो बस, फिर गृह-कलह का बीजारोपण होने में तनिक देर नहीं लगती।

आभूषणों—विशेषकर व्यर्थ- आभूषणों से अनेक प्रकार की हानियाँ भी हैं :—

'आर्थिक-हानि—आभूषणों से सबसे बड़ी हानि धन की है। सहस्रों रुपये आभूषणों के बनवाने में व्यय किये जाते हैं, और आज उन्हें खरीद कर यदि एक साल बाद बाजार में बेचा जाये तो उस समय के भाव के अनुसार उसका मूल्य बहुत कम आँका जायेगा। जो लोग आभूषणों को स्त्री का 'सेविंग-बैंक' ख्याल करते हैं—वे भूलते हैं। बैंक में तो सचमुच ही सूद लगने के कारण रुपयों की वृद्धि होती है, परन्तु

आभूषणों में रुपया लग जाने से, धन की बहुत हानि होने की संभावना रहती है।

स्वास्थ्य- सम्बन्धी हानि—अनावश्यक आभूषणों से स्वास्थ्य की सबसे ज्यादा हानि होती है। मारवाड़ी स्त्रियों को गहने पहनने का बड़ा शौक होता है। जो स्त्रियाँ धनी होती हैं, वे तो सोने और चाँदी के जेवर धारण करती हैं। परन्तु जिनके पास धन नहीं, वे पीतल, काँसा, गिलट और राँगा आदि की बनी हुई चीजें पहनती हैं। पैरों में इतना बोझ लाद लेती हैं कि घुटनों तक पैर छड़ों से ढक जाते हैं—और तब पाँव धोये भी नहीं जा सकते। इसी प्रकार हाथों में भी कोहनी तक चूड़ियाँ पहन लेती हैं। शरीर का कोई ऐसा अंग शेष नहीं रह जाता, जिसमें वे गहने न पहनती हों।

ऐसी दशा में शरीर की शुद्धि कठिन है। इससे भाँति-भाँति के रोग पैदा हो जाते हैं, और शरीर से दुर्गंधी भी आने लगती है। आभूषणों की रगड़ से—यहाँ तक भी देखा गया है, कि स्त्रियों की कोमल त्वचा भी काली पड़ जाती है।

सौंदर्य की हानि—इन आभूषणों से सौंदर्य की वृद्धि भी नहीं होती। शरीर कुरुप, भद्दा और हास्यास्पद प्रतीत होने लगता है। पैरों में मोटे-मोटे कड़े सचमुच ऐसे ही मालूम होते हैं, जैसे कैदियों के पावों में बेड़ियाँ—और हाथों में कड़े तो हथकड़ियों की तरह से होते ही हैं। नाक को छिदवा कर उसमें इतने बड़े बड़े नथ पहने जाते हैं, कि वे नाक की सफाई तक नहीं कर सकतीं। ये सभी आभूषण कुरूपता पैदा

करने वाले होते हैं। इनका शौक होना स्त्रियों के लिये बिल्कुल ठीक नहीं।

आभूषण ही चोरी और हत्या के कारण हैं—अनेक स्त्रियाँ आभूषणों के कारण अपहरण कर ली जाती हैं। आभूषणों की चोरी भी अधिकता से होती है। अनेक अवसरों पर इनके कारण स्त्रियों और बच्चों की जानें भी चली जाती हैं। इसलिये आभूषणों के इस बढ़ते हुए रोग को अवश्य रोकना चाहिये। स्त्रियें भी स्वयं इसका ख्याल रक्खें।

आभूषण सुन्दर तथा कम से कम संख्या में धारण करने से ही स्त्री के सौंदर्य में आकर्षण उत्पन्न हो सकता है। गले में हार, अँगुली में अंगूठी और हाथों में दो दो चार-चार चूड़ियाँ तथा कानों में बुन्दे और नाक यदि छिदी है तो उसमें एक छोटी-सी-कील—बस, इतना ही गहना स्त्रियों के लिये काफी है। इसके सिवा, यदि कमर में एक या डेढ़ इंच चौड़ी चाँदी की एक पट्टी, जिसे तगड़ी भी कहते हैं, बनवाई जाये तो वह स्त्रियों के लिये लाभदायक भी है और सुन्दर भी।

देखिये, स्त्रियों के आभूषण के सम्बंध में पूज्य बापू क्या लिखते हैं:-

'संयुक्त-प्रान्त के सफर में गरीब और अमीर बहनों के गहने देख-देख कर मैं घबरा उठता था। यह शौक कहाँ से और क्यों पैदा हुआ होगा, मैं इसका इतिहास नहीं जानता। इस कारण मैंने थोड़ी अटकल से—कुछ अनुमान से काम लिया है। स्त्रियाँ हाथों और पावों में जो गहने पहनती हैं, वे उनके कैदी-पनकी निशानी है। पैर के गहने तो

इतने भद्दे और वजनदार होते हैं कि स्त्रियाँ उन्हें पहन कर दौड़ना तो दूर, तेजी से चल भी नहीं सकतीं। कई स्त्रियाँ हाथ में इतने गहने पहनती हैं कि उन्हें पहनने पर हाथ से ठीक तरह काम भी नहीं लिया जा सकता। इसलिये ऐसे गहनों को मैं हाथ-पाँव की बेड़ियाँ ही समझता हूँ। कान बिंधा कर दो गहने पहने जाते हैं, मेरी नजर में तो उनकी उपयोगिता यह ही साबित हुई है कि उनके द्वारा आदमी औरतों को जैसा नाच नचावे, उसे वैसा ही नाचना पड़ता है। एक छोटा-सा बच्चा भी अगर किसी मजबूत स्त्री का नाक या कान का गहना पकड़ ले तो उसे बेबस हो जाना पड़ता है। इसलिये मेरी नजर में तो खास-खास गहने स्त्रियों के लिये सिर्फ गुलामी की निशानी है। क्या मैं आशा करूँ, कि हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ इस ओर विशेष ध्यान देकर—अपने भीतर से त्रुटियाँ निकालने की चेष्टा करेंगी?

'गहनों की उत्पत्ति की जो मैंने कल्पना की है, अगर वह ठीक हो तो चाहे जैसे हलके और खूबसूरत गहने क्यों न हों, हर अवस्था में त्याज्य ही हैं। वह व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है, व्यक्तिगत अधिकार की बात भी इसमें नहीं है, यह तो निरी स्वच्छन्दता है और त्याज्य है। क्योंकि इसमें निर्दयता और बेरहमी है। अन्तमें मैं पूछूँगा कि इस कङ्गाल देश में, जहां प्रत्येक व्यक्ति की औसत आमदनी प्रायः सात या बहुत हो तो, आठ पैसे प्रतिदिन से ज्यादा नहीं है, किसे अधिकार है कि वह एक रत्ती भर वजन की भी अंगूठी पहने। विचारवती स्त्री, जो निज देश की सेवा करना चाहती है, गहने को कभी छूना पसन्द न करेगी।'

प्रिय बहनो! इस खण्ड में सौंदर्य और शृंगार आदि के विषय में कई बातें संक्षेप में लिखकर मैं तुम्हें यह बता चुकी हूँ की स्त्री, यदि चाहे-तो वह अपना सौंदर्य आजीवन स्थिर रख सकती है। आवश्यकता है केवल सावधानी से काम करने की। अभी तक जो बात बताई हैं, इनका सम्बंध केवल बाह्य सौंदर्य से है। शरीर का सौंदर्य स्वास्थ्य और वस्त्रालङ्कार पर ही अधिकतर अवलंबित है। परन्तु केवल शारीरिक-सौंदर्य से ही स्त्री की सुन्दरता पूर्ण नहीं हो जाती, उसका सच्चा सौंदर्य तो उसका सुन्दर गुणों में झलकता है। सतीत्व उसका सच्चा भूषण है। सदाचार, सहानुभूति, उदारता, दया, सच्चाई, त्याग आदि गुणों से शरीर का सौंदर्य अधिक कान्तिपूर्ण हो जाता हैं। इसलिये प्रत्येक गृहिणी का यह परम कर्त्तव्य है, कि वह जैसे भी हो अपनी आन्तरिक सौंदर्य की वृद्धि करने का प्रयत्न करे। यह विषय बहुत गंभीर है—इसे जितना भी समझने की चेष्टा की जायगी, उतना ही यह विषय हमारी बहनों को चतुर-गृहिणी बनाने में एक मित्र के समान सहायता करेगा।

इति श्री श्रीमती सधना सेन विरचितम् 'चतुर-गृहिणी' द्वितीय खण्डे समाप्तम्।

तृतीय-खण्ड

१

यौवनारंभ

अङ्ग मरोरे दन्त घिसे, जोड़-जोड़ चटखाये।
यौवन के मद में भरी, युवती लहरें खाये॥
विरह-विछोह का वेदना, तड़प-तड़प रह जाये।
पिय-दर्शन करने चली, तो रही डगर शरमाये॥

कन्याओं में जब यौवन का आरम्भ होता है, तो उनके शरीर में कई ऐसे परिवर्तन होने लगते हैं—जिनसे प्रकट हो जाता है कि अब वह बाल्यवस्था को पार करके नवयौवनावस्था में प्रवेश कर रही है। स्त्री में यौवन का सबसे मुख्य लक्षण है उसका रजस्वला होना। यों तो यौवन जब आता है, तो अपनी समस्त कलाओं और छटाओं को बिखेरता हुआ आता है—किसी से यह बात छिपी नहीं रहती कि अब अमुक कन्या जवान हो गई है। यौवन छिपा कर रखने वाली वस्तु नहीं।

इसके चिन्ह—नवयौवन के लक्षण ही अलग होते हैं—सबसे भिन्न। कन्या में होने वाले असाधारण परिवर्तन अपने आपही बता देते हैं कि अब वह युवती हो गई है।

जब कुमारी की अवस्था प्रायः बारह वर्ष की हो जाती है, तब उसके गर्भाशय (Uterus) से योनि द्वारा प्रति अट्ठाईसवें दिन रक्त या रज निकलना आरंभ होता है। जिस स्त्री को रज आता है, उसे रजस्वला और रजोदर्शन के प्रथम दिन से सोलवें दिन तक का समय ऋतुकाल कहलाता है। रजोदर्शन स्त्री के शरीर का स्वभाविक व्यापार है। इसे रोग न समझना चाहिये। यौवनावस्था के आरंभ के समय—अर्थात् बारह वर्ष की आयु में, कुमारी की बाह्य और आन्तरिक जननें-द्रियों में परिवर्तन और योनि की वृद्धि भी होने लगती है। भग के आस-पास लोम उगने लगते हैं। स्तनों का उभार भी बढ़ने लगता है। हृदय में कामवासना की अनुभूति होने लगती है। इन लक्षणों के साथ-साथ मानसिक-परिवर्तन भी होने लगते हैं। कुमारी में अब लज्जा के भाव बढ़ने लगते हैं और वह जननेंद्रिय के रहस्य और उनकी वृद्धि के कारण जानने के लिये उत्सुक हो जाती है। अब डिंब-ग्रन्थियों (Ovaries) में डिंब (Ovum) की रचना शुरू हो जाती है। यह डिंब या अंड डिंब-ग्रंथि से डिंब-प्रणाली (Fall opian tube) में पहुंच जाता है। डिंब-ग्रंथि से गर्भाशय तक अंड के पहुँचने में सात से पन्द्रह दिन तक का समय लग जाता है। डिंब-ग्रंथि में डिंब की रचना प्रथम रजोदर्शन से आरंभ होती है और ४०-४९ वर्ष की अवस्था तक डिंब की रचना प्रतिमास जारी रहती है। जब संभोग के समय पुरुष का

वीर्य योनिद्वारा गर्भाशय में प्रवेश करता है और वीर्य के कीटों से संयोग होता है; तब गर्भ-धारण होता है। इससे यह स्पष्ट है कि गर्भ-धारण का रजोदर्शन से घनिष्ट सम्बन्ध है।

प्रथम मासिक-धर्म

कुमारी में प्रथम रजोदर्शन या मासिक-धर्म एक दम बिना किसी शारीरिक-परिवर्तन के सहसा नहीं होता। मासिक-धर्म से पूर्व स्तनों में एक प्रकार की सूजन-सी आ जाती है और उनसे श्वेत श्लेष्मा (white mucus) भी निकलता है। ऐसा भी देखा गया है कि इन लक्षणों के कई महीने बाद मासिक-धर्म हुआ। आरंभ में मासिक-धर्म अनियमित होता है। कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन महीने तक मासिक-धर्म होता ही नहीं। परन्तु जब नियमित रूप से होने लगता है, तब लगातार प्रति अट्ठाईसवें दिन होता है। जो स्त्री पूर्ण स्वस्थ होती है, उसे मासिक-धर्म ठीक अट्ठाइसवें दिन होता है। रक्त तीन से छः दिन तक निकलता रहता है। कोई-कोई पूरे तीन दिन होकर चौथे दिन ऋतु-स्नान कर लेती है।

मासिक-धर्म के समय के लक्षण

योनि से रज प्रवाहित होने के चार-पाँच दिन पूर्व से गर्भाशय की श्लैष्मिक-कला (Inner-mucus memdrare) अधिक रक्त मय होने के कारण पहले दूनी या तिगुनी मोटी और कोमल हो जाती है। यह मोटापन नसों में अधिक रक्त भर जाने से हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? अभी तक किसी चिकित्सक ने इसे नहीं जान पाया।

इसके उपरान्त गर्भाशय से रक्त बहना आरम्भ होता है। रक्त कैसे प्रवाहित होता है? केशिकायें (Capillaries) जब अधिक रक्तपूर्ण हो जाती हैं, और उनसे रक्त बह कर श्लैष्मिक कला के नीचे कई जगह इकट्ठा हो जाता है। अंत में रक्त-भरसे यह श्लैष्मिक कला फट जाती है और रक्त बह कर गर्भाशय में आ जाता है। इस रक्त में अनेक 'सेलें' भी मिली रहती हैं। मासिक धर्म के रक्त में श्लेष्मा मिली रहने से खरिक (Calcitens) अधिक होने पर भी रक्त जम नहीं सकता। रक्त का रंग गहरा लाल होता है, और उसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। इसमें एक विशेष प्रकार की गंध आती है।

ये उपर्युक्त परिवर्तन केवल गर्भाशय की त्वचा में ही होते हैं, ग्रीवा, डिंब-ग्रंथि, डिंब-प्रणाली आदि में नहीं। ग्रीवा, डिंब-ग्रंथि और प्रणाली केवल अधिक रक्त मय हो जाते हैं। गर्भाशय और योनि ले सुख भी होता है।

उत्तेजना का अनुभव

मासिक-धर्म से एक-दो दिन पूर्व एक विचित्र समवेदन-शीलता और स्नायु सम्बन्धी उत्तेजना का अनुभव होता है। उदर में कुछ भारीपन का अनुभव होता है। आलस्य, अरुचि, कमर दुखे तथा पैर में भारीपन और दर्द मालूम होता है। परन्तु रक्त-प्रवाह के साथ ही ये लक्षण विलीन हो जाते हैं।

शुद्ध-रक्त के लक्षण

भाव प्रकाश में लिखा है कि जो रक्त खरगोश के रक्त के समान अथवा लाख के रस के समान हो, और जो वस्त्र में लगा हुआ धोने से

छूट जाये, वह रक्त उत्तम है। मासिक धर्म के प्रारंभिक दिन प्रथम बार जो रक्त प्रवाहित होता है, उसमें 'श्लेष्मा' और 'सेल' (epitheliol cells) मिली रहती हैं। दूसरी बार के रक्त में चमक होती है, और प्रायः शुद्ध होता है। तीसरी बार के रक्त में 'विशुद्ध-रक्त' की थोड़ी मात्रा होती है। पुनः श्लेष्मा निकलती है, परन्तु 'सेलें नहीं निकलतीं'।

रक्त की मात्रा

रक्त, तीन से छः दिन तक प्रवाहित होता है, और इन दिनों में ५ से ७ औंस तक रक्त निकल आता है। यदि रक्त छः दिन से अधिक या मात्रा में इससे अधिक निकले, तो ठीक नहीं। प्रतिदिन 'तीन नेपकिन' से अधिक प्रयोग करना अतिशयता है प्रथम तीन दिनों में रक्त अधिक मात्रा में निकलता है। पश्चात् धीरे धीरे कम होता जाता है।

प्राचीन संस्कृत के वैद्यक ग्रन्थों में ऋतुमती के लिये बड़े-बड़े नियम निर्धारित किये गये हैं, जिनका आजकल पालन करना 'असभ्यता' में गिना जायेगा। रजस्वला स्त्री को 'अछूत' माना जाता है। उसे यहाँ तक अशुद्ध माना जाता है कि कई जातियों में तो यह रिवाज है कि रजस्वला स्त्री के रहने का प्रबंध भी एक अलहदा कमरे में कर दिया जाता है। उसी में वह पाँच-छः दिन रहती है। वहीं उसे बर्तन दे दिये जाते हैं, उन बर्तनों में खाना उसे दूर से दे दिया जाता है, और उसे समस्त गृह में स्वतन्त्रता से घूमने-फिरने तक की आज्ञा भी नहीं होती। इस प्रकार इन दिनों उसके साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया जाता है। वास्तव में उचित तो यह है कि इन दिनों में उसको अधिक विश्राम, मानसिक शान्ति और शुद्ध वायु, जल और सात्विक-भोजन दिया जाये।

परन्तु विपरीत इसके—उसे एक प्रकार से कारागार में बन्दी बना कर इन समस्त सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता है। ऐसा कठोर व्यवहार करना न केवल सभ्यता के नाते घृणित ही है, बल्कि सर्वथा अन्यायपूर्ण भी।

रजस्वला की दिनचर्या

इसमें सन्देह नहीं कि रजोदर्शन-काल में स्त्री एक विशेष शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में होती है; अतः उसे इस समय स्वास्थ्य की दृष्टि से कुछ विशेष नियमों का पालन अवश्य करना चाहिये। यदि इन नियमों का पालन करने में असावधानी बर्ती गई, तो उसे विविध रोगों से आक्रान्त होना पड़ेगा। आजकल इन आवश्यक नियमों का पालन न करने का ही यह दुष्परिणाम है कि अधिकांश स्त्रियाँ मासिक-धर्म सम्बंधी प्रदर (leucorrhoea) आदि भयंकर रोगों का शिकार बन जाती हैं। स्त्रियों के लिये यह एक स्पष्ट चेतावनी है कि वे मासिक-धर्म के समय विशेष सावधानी से काम लें।

ब्रह्मचर्य का पालन

रजोदर्शन-काल में स्त्रियों को ब्रह्मचर्य का पूरी तरह पालन करना चाहिये। अपने विचारों को शुद्ध और पवित्र रक्खें। मन में कोई अश्लील या कामोत्तेजक विचार कदापि न उठने दें। रजोदर्शन के समय मैथुन करना स्त्री और पुरुष दोनों के लिये हानिकारक है। मासिक-धर्म के समय संभोग करने से गर्भ-स्थिति नहीं हो सकती। स्त्री की जननेंद्रिय रक्तपूर्ण और अधिक कोमल हो जाती है। इसलिये मैथुन करने से

जननेंद्रिय को हानि पहुंचने की विशेष संभावना रहती है। इस समय मैथुन का आनन्द भी प्राप्त नहीं हो सकता। पुरुष को दूषित रक्त से रोग भी पैदा हो सकते हैं।

शीत से रक्षा—रजस्वला स्त्री को अपने शरीर की शीत से रक्षा करनी चाहिये। शरीर के किसी भी भाग को ठंड न लगने देना और विशेष रूप से हाथ, पैर, उदर और योनि को ठंड से बचाना बहुत जरूरी है। शीतल जल का भी व्यवहार न करना तथा भूलकर भी शीतल जल से योनिको न धोना चाहिये। शीत से रक्षा के लिये काफी गरम वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिये। शीत-वायु से भी अपने प्रत्येक अङ्ग को बचाना चाहिये। शीत, रजस्वला का सबसे बड़ा शत्रु है।

रजस्वला के शरीर और जननेंद्रियों में शीत लग जाने से गर्भाशय-सम्बंधी अनेकों रोग उत्पन्न हो जाते हैं। नाभि के आस-पास और उसके नीचे वेदना होने लगती है। यदि ऐसा हो, तो वह स्थान तुरन्त सेंक देना चाहिये।

विश्राम—रजस्वला को विश्राम की भी अधिक आवश्यकता होती है। इसलिये उस घरके ऐसे काम-काज कदापि नहीं करने चाहिये, जिन में अधिक परिश्रम करना पड़े, और फलतः शरीर में थकावट अनुभव होने लगे। मासिक-धर्म के समय अधिक दौड़ना, भागना और यात्रा भी करना उचित नहीं है। ऐसा करने से गर्भाशय को हानि पहुंचने की संभावना रहती है।

सात्विक भोजन—रजस्वला को हल्का, पचनशील और सात्विक भोजन करना चाहिये। उत्तेजक तथा मसाले वाले भोजन सर्वथा वर्जित

हैं। अधिक गरम और अधिक ठंडे पदार्थों का सेवन भी निषिद्ध है। गर्मी में बर्फ का सेवन भी न करना चाहिये। जहाँ तक हो सके वादी वस्तुओं का सेवन भी बहुत कम—अल्प-मात्रा में करना चाहिये।

शयन—रजस्वला को दिन में न सोना चाहिये; और आकाश के नीचे किसी खुले स्थान में, ठंड में सोना हानिकारक है। भूमि अथवा कठोर शय्या पर सोना—नँगी-खाट पर बिना कुछ बिछाये, सोना भी उचित नहीं।

शुद्धता—रजस्वला को शुद्धता की ओर भी काफी ध्यान देना चाहिये। मासिक-धर्मकाल में स्नान न करना चाहिये। परन्तु दिन में तीन-चार बार गरम जल से योनि को साफ करना चाहिये। 'नेपकिन' बदल कर दूसरी लगा लेनी चाहिये। दिन भर में प्रायः ३-४ नेपकिनें प्रयोग में लानी चाहिये। नेपकिन शुद्ध हो। मैले वस्त्रों का योनि से स्पर्श करना भी हानिकारक है। चीथड़े, फटे-पुराने मैले वस्त्रों में चिपँटे कीटाणु रहने का डर रहता है।

चित्त की प्रसन्नता—रजस्वला को किसी प्रकार का शोक अथवा चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अपना मन सदैव प्रसन्न रखना चाहिये। इस समय शोक-चिन्ता करने से शरीर पर बुरा असर पड़ता है।

स्नान—रजस्वला को चौथे, पाँचवें या छठे दिन—जब रक्त बिल्कुल बंद हो जाये, गरम-जलसे स्नान करना चाहिये। शरीर के समस्त अङ्गों को भली भाँति धोना चाहिये। योनि को भी गरम जल से भली भाँति साफ किया जाये। और उसे केवल बाहर से ही नहीं,

प्रत्युत भीतर से भी उसके अङ्ग-प्रतियङ्ग को अच्छी तरह साफ करना चाहिये।

पति-दर्शन—स्नानादि के पश्चात् स्त्री को चाहिये कि वह स्वच्छ और उत्तम वस्त्र धारण कर, सब प्रकार से सुसज्जित हो, सृष्टि-नियन्ता जगतकर्ता, उस परम पता परमात्मा की आराधना करे, और अपने जीवन को मङ्गलमय और सुखी बनाने के लिये प्रभू से प्रार्थना करे। इसके पश्चात् यदि पति घर में ही हो, तो स्त्री को अपने प्राणेश्वर के चरणारविंद में प्रणाम कर उनका शुभ-दर्शन करना चाहिये। इस समय स्वभावतः स्त्री के मन में प्रसन्नता और मुख पर मुस्कराहट तथा हृदय में उल्लास भी होता है। शरीर में कामोद्दीपन पूर्णतया व्याप्त हो जाता है। इस समय स्त्री में संभोग की लालसा भी प्रबल होती है। संभोग का वास्तविक उद्देश्य तो सन्तानोत्पत्ति ही है—आनंद-प्राप्ति तो गौण उद्देश्य है।

देखिये, ऋतुमती स्त्री को सावधान करने के लिये रतिशास्त्र धुरंधर विद्वान एवम् काश्मीराधिपति के प्रधान मन्त्री श्रीयुत कोका पण्डित जी क्या कहते हैं—तनिक ध्यान पूर्वक पढ़ें तथा इसी के अनुकूल आचरण करने की चेष्टा करें।

रज समय ऐ नारियो, रोना दरिद्रहि लायेगा।
होते ही धन-नाश सब, घर हाथ मल पछतायेगा॥
दन्त माँजे रज समय, या दिन-दहाड़े सोयेगी।
गर्भ होगा पात हा!धन, सन्तती से धोयेगी॥

तुर्श खारी दूध घृत, रजकाल में खाती रहे।
हो गया रज बंद रोगिनी, बने दुःख पाती रहे ॥
दृगन अंजन अङ्ग मंजन, रजदिन कोई करे।
दुष्ट सन्तति होय ताके, नष्ट-कुल दोऊ करे ॥
भोजन अधिक करे जो बाला, उदर-रोग हो सही।
तेल या उबटन मले, सन्तान कुष्टी शक नहीं ॥
नख कटे सन्तान रोगी, बजाना-गाना करे।
बासु हो सन्तान गूँगी, और भी बहरे परे ॥
हिंसा करते निर्दयी, तांबूल रोगी दन्त का।
चिंता करे सुत शून्य ऐसो, वचन ओका सन्त का ॥

२

गर्भाधान

उस सृष्टिकर्त्ता ईश्वर के, पद-कमल में ध्यान हो।
तब मुखसे निकले 'गृहस्थियोंके, रक्षक तुम्ही भगवान हो॥'
निर्धनों के धन हो तुम, फिर कोई जो निःसन्तान हो।
हे ईश! उस पर हो दया, और शुद्ध गर्भाधान हो॥

गर्भाधान ही मनुष्य के जीवन की खास जड़ है। आज इसका ज्ञान क्या पुरुष, क्या स्त्री, किसी को नहीं रह गया है। इसीसे इच्छानुसार वे सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते। परन्तु इसमें उनका भी दोष नहीं। जब देश में ऐसी या इस सम्बन्ध की शिक्षा का एक भी प्रबन्ध ऐसा नहीं, जो हमारे नवयुवक अथवा नवयुवती को—जिन्हें भविष्य में गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर संसार भर की ढेरों जिम्मेदारियाँ अपने ऊपर लेनी हैं—गृहस्थ-सम्बन्धी पूर्ण शिक्षा मिल सके। जो-कुछ थोड़ा-बहुत

ज्ञान वे अपने आप ही इधर उधर से उपार्जन कर सकते हैं, उसी को लेकर वे गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करते हैं।

इसलिये गर्भाधान के सम्बन्ध में जानने योग्य खास-खास बातों का लिखना बहुत जरूरी है। बहुधा स्त्रियाँ अपनी मूर्खता के कारण गुप्त रोगों को जानती ही नहीं। जब वह रोग जड़ पकड़ लेता है, तब उन्हें होश आता है। कितनी ही स्त्रियाँ लज्जा के कारण अपने गुप्त रोगों का हाल किसी से नहीं कहतीं और अपने-आप ही अपना सारा जीवन नष्ट कर डालती हैं। किन्तु यह दोनों ही बात बहुत घातक हैं। स्वास्थ्य ठीक रहने पर स्त्री को एक महीने में (अट्ठाइसवें दिन) मासिक-धर्म हुआ करता है। गर्भ-धारण करने के लिये रजोदर्शन से चौथे दिन बाद का समय अच्छा है। कामवास की तिथियें निम्न प्रकार से बताई गई हैं।

कोकशास्त्र के धुरन्धर विद्वान् कोका पण्डित ने तो कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक तथा शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा तक, चन्द्रकलाओं के बढ़ाओ-घटाव अनुसार कामवास-वर्णन किया है, परन्तु अनुभव से प्रतीत होता है कि जिस दिन स्त्री रजस्वला हो, उसे ही कृष्ण प्रतिपदा जानकर कामवास का अनुमान करे। गर्भाधान के लिये केवल १६ दिन ही हैं, और शेष १४ दिन में—जब तक स्त्री रजस्वला न हो, रति करना व्यर्थ है। क्योंकि सोलहवें दिन पश्चात् गर्भाशय बन्द हो जाता है।

निम्न-लिखित सोलह तिथियों में से—प्रथम दिन स्त्री घाएडालिन, द्वितीय दिन भंगिन, तृतीय दिन चमारिन तथा चौथे दिन भी

छूत ही रहती है—अतः इन चार दिनों में उसका मुँह देखना भी पाप सा है। ५-७-६-१५ इन चार तिथियों में जो गर्भाधान किया जाता है, उस से कन्या उत्पन्न होती है। क्योंकि इन तिथियों में रज की सबलता रहती है—तथा ६-८-१०-१२-१४ और १६ इन छः तिथियों में गर्भाधान करने से रज की निर्बलता के कारण पुत्र उत्पन्न होना कहा गया है। स्मरण रहे कि आठवीं रात के पश्चात् गर्भाधान से जो सन्तान होगी, वह बल, वीर्य, बुद्धि और रूप-गुण में चढ़ी-बढ़ी तथा इसके प्रथम गर्भाधान से जो सन्तान होती है, वह निर्बल, निर्बुद्ध और कुरूप होती है। प्रथम चार रात्रि की भाँति ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दनीय है। अतः कामीजन स्वेच्छानुसार आचरण करें।

किस तिथि में कामदेव किस अंग में वास करता है—तथा उसे सचेत करने की क्रिया:—

तिथि	अंग	क्रिया
प्रतिपदा	कपाल में	ये चार रात्रि अछूत होने के कारण वर्जित हैं।
द्वितीया	नेत्र में	
तृतीया	कपोल में	
चतुर्थी	ओष्ठ में	
पंचमी	गले में	गुदगुदाहट
षष्ठी	काँख में	,,
सप्तमी	हृदय में	चुम्बन
अष्टमी	कुच में	मर्दन
नवमी	नाभि में	गुदगुदाहट
दशमी	कमर में	मर्दन

एकादशी	योनि में	नख बचाकर चिमटी से मंद २ मसलें
द्वादशी	जंघा में	खूब मर्दन (थपकी इत्यादि)
त्रयोदशी	पिंडली में	मर्दन
चतुर्दशी	पैर के तलवे में	अपने पैर के अंगूठे से गुदगुदाहट
अमावस्या	पैर की अंगुली में	अंगुली से रगड़न

पन्द्रह दिन पश्चात् इसी प्रकार चढ़ाव जानना चाहिये। पुरुष के अंगों में इसके विपरीत होता है।

कामदेव कुच, कपाल, कुक्षी, योनि और जंघा इन पाँच स्थानों में अधिक वास करता है। अतः इन स्थानों में चुम्बन मर्दनादि करने से काम शीघ्र जागृत होता है। गर्भाधान के समय पति-पत्नि को प्रसन्न-चित्त होकर सहवास करना चाहिये।

रजोदर्शन के प्रथम दिन से सोलहवें दिन तक ऋतुकाल होता है। अर्थात १६ वें दिन तक गर्भ-धारण हो सकता है। इसी अवधि में स्त्री की डिंब-ग्रंथि में डिंब तैयार होकर डिंब-प्रणाली द्वारा गर्भाशय या जरायु में आ जाता है। यदि इस समय पुरुष के वीर्य के शुक्र-कीटों से उस डिंब का संयोग हो जाये, तो गर्भ-स्थिति हो जाती है। अतः गर्भ-धारण के लिए ऋतु-स्नान के बाद के दस दिन सब से अधिक फलप्रद हैं। यह विषय बड़ा महत्वपूर्ण, गहन और स्त्री-जाति के लिए सबसे उपयोगी है; परन्तु दुःख है, इसी विषय की ओर स्त्री जाति की सबसे अधिक अपेक्षा है। रजोदर्शन के नियमों का यथोचित पालन न करने से नारि को जो हानि उठानी पड़ती है --उसे देखते हुए कौन हृदय ऐसा कठोर होगा जो दुःख से न पसीज उठे।

कोक पढ़े विन रति समय, जिमि दीपक बिन धाम।
येहि कारण रचना रची, कोकाजी निज नाम॥
धनि जीवन उन नरको, जो परहित में देत।
तन मन धन औ सम्पदा, सब जग सुख के हेत॥

सहवास में वर्जनीय बातें

मनुष्यों के मध्य में, अर्थात् जहाँ अपना सहवास प्रकट हो जाए; अधिक पवनयुक्त या पवनरहित कमरा; बिना बिस्तर के अथवा पृथ्वी पर ही अन्य गृह में; ठाकुर द्वारा या गुरुद्वारे में; तीर्थस्थान; धर्मशाला या देशाटन में व्रत; श्राद्ध, शोक, एवं किसी पर्व दिन में; रात्रि के प्रथम दो पहर अथवा अन्तिम पहर (ब्राह्म मुहूर्त में); भय के स्थान अथवा विपिन जंगल में, अश्विनी जेष्टा, अश्लेषा और रेवती नक्षत्र में विषय भोग करना सर्वथा वर्जित है।

शनि, रवि, मंगल, बुद्ध ये चार दिवस भी वर्जनीय हैं।

सहवास का समय

ऊपर लिखी हुई बातों का विचार करते हुए जब स्त्री की पूर्णेच्छा हो तब विषय करना चाहिए। क्योंकि—

जा त्रिय को रति-रुचि नहीं, पिया विलासै ताय।
भामिन मुदित न होय कछु, वीर्य अकारथ जाय॥

कामदेव नारी के वाम-अङ्गमें सदैव वास करता है। उसके जागृत होने पर निम्न-चिन्ह दृष्टिगत होते हैं—

अङ्ग मरोरे दन्त घिस, फारे नयन विशाल।
मल्ह भाँति लपटन चहै, काम सताई बाल॥

जिस समय स्त्री के नेत्र लाल हो जावें, श्वास उष्ण एवं वेग से चले, अँगड़ाई लें, जम्हाई आने लगे, दाँत किट किटावे, सिसकियाँ भरे, बारम्बार पुरुष के अङ्ग पर अपना अङ्ग डाले—तब समझे कि स्त्री में कामदेव जागृत हो चुका है। जिस दिन गर्भाधान करना हो, सात्विक, तीक्ष्ण, खटाई, मिर्च-रहित भोजन करे और चित्त बिल्कुल शान्त हो चिन्ता बिल्कुल न रखे, सुन्दर वस्त्रालङ्कार पहन सुगंधित द्रव लगा प्रथम स्त्री अपने मन में पुत्र की इच्छा रखती हुई, पहले वाम पैर उठा पलंग पर चढ़े। पश्चात् पुरुष भी अपने मन में पुत्रेच्छा रख, पहले दक्षिण पैर उठा स्त्री के वाम ओर से—जैसे अश्वारूढ़ होते हैं, शय्या पर चढ़ कर विषय करें।

स्त्री जननेंद्रियाँ

स्त्री-जननेंद्रिय के विवेचन से पूर्व बस्ति-गुहा (Pelvis-cavity) के संबंध में लिखना उपयुक्त होगा।

वस्ति-गुहा

मेरुदण्ड (Spinal column) और अर्द्ध-शाखाओं के बीच में जो अस्थियों का चक्र है, उसे वस्ति,कूल्हा (pelvis) कहते हैं। प्रसव के समय शिशु इसी के बीच से निकलता है। यह वस्ति तीन अस्थियों के मिलने से बनी है। दो अस्थियाँ 'अनामिका' (innominate) कहलाती हैं। एक त्रिकास्थि (Sacrum) और

एक पुच्छास्थि (Coccyx) त्रिकास्थि मेरुदण्ड के निचले सिरे से लगी रहती है, और उसके नीचे पुच्छास्थि होती है। त्रिकास्थि के दोनों ओर अनामिकास्थि (Hip bones) होती है, जो गोलाई खाकर सामने परस्पर मिल जाती है। इस सन्धि-स्थान को विटप-संधि या भग-संधी कहते हैं। वस्ति-गुहा के दो भाग माने गये हैं। ऊर्ध्व और अधः। ऊर्ध्व भाग (False pelvis) गर्भावस्था में गर्भाशय को सहारा देने के लिये होता है। परन्तु अधो भाग (True pelvis) प्रसव-मार्ग होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण है।

स्त्री-जननेंद्रियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक बाह्य, दूसरा आन्तरिक।

बाह्य जननेंद्रियाँ

बाह्य जननेंद्रियाँ वे हैं; जो बाहर से दिखलाई देती हैं। इन्हें भग (Vulva) कहते हैं।

१-कामाद्रि—यह भग का ऊपरी भाग होता। इसके नीचे बसा होती है, और युवावस्था में यहाँ लोम उग आते हैं।

२-बृहद् भगोष्ठ (Labia majora)—ये दोनों भगोष्ठ योनि-द्वार के दोनों ओर होते हैं। इनके अंदर बसा होता है, और युवावस्था में इन पर लोम उग आते हैं। बाल्यावस्था में इनका भीतरी भाग परस्पर मिला रहता। पुरुष-प्रसंग या सन्तानोत्पत्ति के उपराँत यह दोनों अलग-अलग हो जाते हैं।

३—लघु भगोष्ठ (Labiaminora)—ये दोनों भगोष्ठ बृहद् भगोष्ठों के भीतर, योनि-द्वार के आस पास होते हैं। ये पतले

और लाल रंग के होते हैं। दोनों ओर से भगाँकुर के समीप जाकर दोनों लघु भगोष्ठ दो मार्गों में दिखलाई देते हैं।

४—भगाँकुर (Clitoris) ऊपर जहाँ दोनों वृहदोष्ठ मिलते हैं, उससे प्रायः आधा इंच नीचे भगाँकुर होता है। यह शिश्न की भाँति उत्तेजन शील होता है। भगाँकुर या भगनाशा शिश्न से बहुत छोटा होता है। किन्तु इसमें शिश्न की भाँति कोई छि नहीं होता। मैथुन के समय भगनासा में अधिक रक्त आजाने से और पेशियों के संकोच से उस रक्त के वहाँ भरे रहने से दृढ़ता और उत्तेजना आ जाती है।

५—योनि-द्वार—(Vaginal Orifice)—यदि दोनों वृह-दोष्ठों और लघु भगोष्ठों को अँगुली से अलग-अलग कर दिया जाये, तो योनिद्वार दिखलाई पड़ेगा। इसी के द्वारा मैथुन किया जाता है। शिशु का प्रसव भी इसी मार्ग से होता है। गर्भ-स्थिति होने तक यह अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहता है, पश्चात् इसमें भी परिवर्तन होने लगता है।

६—मूत्रद्वार (Urathral orifice —यह मूत्रद्वार एक छोटा-सा छिद्र योनिद्वार से प्रायः आधा इंच ऊपर होता है। मूत्र इसी से त्याग किया जाता है। गर्भ-धारण के समय इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

७—योनिच्छद (Hymen)—यह एक पतली त्वचा होती है, जिससे कुमारावस्था में योनि-द्वार आच्छादित रहता है। कभी-कभी यह चोट आदि लगने से भी फट जाती है, और कभी-कभी यह इतनी कड़ी होती है कि मैथुन-क्रिया से भी नहीं फटती। बहुधा यह त्वचा मैथुन

करने से प्रथम बार ही फट जाती है और इससे थोड़ा रक्त निकलता है।

आन्तरिक जननेंद्रियाँ :

आन्तरिक जननेन्द्रिय वे हैं, जो वस्ति-गुहा के भीतर होती हैं, और जो बाहर से दिखलाई नहीं देतीं।

१—योनि (Vagina)—यह एक नलिकाकार गह्वर होता है, जो गर्भाशय से लेकर भग तक फैला होता है। इसका नीचे का भाग संकीर्ण, और ऊपर का भाग प्रसारित होता है। इसकी अगली दीवार दो या तीन और पिछली तीन या चार इंच लम्बी होती है। इसके सामने मूत्र-नलिका (Urethral) और मूत्राशय (Bladder) और पीछे मलाशय (Rectum) रहता है। यह आवश्यकता पड़ने पर चौड़ी भी हो सकती है, परन्तु साधारणतया इसकी दो दीवारें परस्पर मिली रहती हैं। प्रसव के समय योनि इतनी चौड़ी हो जाती है कि शिशु सुविधापूर्वक बाहर निकल सकता है। यह रबर की भाँति लचीली होती है। गर्भाशय की ग्रीवा का कुछ भाग योनि में रहने से उसके चारों ओर योनि के चार कोण (Fronix) बन जाते हैं। योनि का स्राव या रस लक्काम्ल (Lactic acid) होने के कारण अम्ल होता है। यह अम्ल एक विशेष प्रकार के लक्काम्ल बनाने वाले जीवाणु द्वारा बनता तथा अन्य प्रकार के जीवाणुओं के लिये नाशक होता है।

२—गर्भाशय (Uterus)—यह योनि के भीतरी द्वार से संयुक्त होता है। गर्भाशय की लम्बाई ढाई इंच से तीन इंच तक, और चौड़ाई

डेढ़ इँच से पौने दो इँच तक होती है। प्रायः एक इँच इसकी मोटाई होती है। इसका आकार सेव या अमरूद की भाँति होता है। गर्भाशय त्रिकोण के आकार का होता है। एक कोण योनि से मिला रहता है और शेष दो कोण डिंब-प्रणाली ('ellobian tube) से मिले रहते हैं। गर्भाशय रबर की थैली की भाँति खाली रहता है। मैथुन के समय पुरुष के शुक्र-कीट से स्त्री के डिंब का संयोग हो जाता है, तब गर्भाधान होता है, गर्भाशय की श्लैष्मिक-कला में नलिकाकार ग्रंथियाँ होती हैं, जिनमें से क्षारीय-रस निकलता है। मूत्राशय और मलाशय के बीच वस्ति-गह्वर (pelvis) के मध्य में दो विस्तृत स्नायु-(Broad ligaments) गर्भाशय को अपने स्थान में रखते हैं। जब ये स्नायु खिंचकर लंबे या ढीले हो जाते हैं, तो गर्भाशय अपने स्थान से हट जाता है।

२-डिंब-प्रणाली (Follobian tube)—गर्भाशय के दो सिरों से ये डिंब-प्रणालियाँ प्रारंभ होकर डिंब-ग्रंथि के बाहर तक फैली हुई हैं। ये विस्तृत स्नायु के ऊपर के सिरों में आवृत रहती हैं। इनकी लम्बाई चार इंच के लगभग होती है, और इनका बाहर का सिरा एक झालर की भाँति का होता है। डिंब-प्रणाली चार भागों में विभक्त होती है। पहला भाग गर्भाशय की दीवार में रहता है। दूसरा इससे आगे का संकीर्ण भाग, तीसरा कुछ चौड़ा भाग और अंतिम भाग फूल की भाँति कुछ खुला हुआ रहता है, जिस पर झालरें-सी लगी रहती हैं। इन में से एक झालर डिंब-ग्रंथि तक जाती है। डिंब-प्रणाली के सिरे से लेकर

वस्ति-गुहा के पार्श्व तक विस्तृत स्नायु का ही भाग लगा होता है।

४—डिंब-ग्रंथियाँ (Ovaries)—स्त्री की ये डिंब-ग्रंथियाँ पुरुष के अंड (Testicles) के समान होती हैं। इन ग्रन्थियों में डिंब (Ovum) तैयार होते हैं। डिंब-ग्रन्थियाँ दो होती हैं। ये दोनों विस्तृत स्नायुओं (Broad ligaments) के पिछले पृष्ट के साथ लगी होती हैं। इनका आकार कबूतर के अंडे की तरह होता है। लंबाई डेढ़ इंच, चौड़ाई पौन इँच और मोटाई आध इँच होती है। इन डिंब-ग्रन्थियों में अनेकों डिंब-कोश (Graffirn fallicle) होते हैं; प्रत्येक डिंब-कोष में एक-एक डिंब (Ovum) होता है। डिंब-कोष परिपक्व हो कर फटता है, और डिंब निकल कर धीरे-धीरे डिंब-प्रणाली में प्रवेश करता है। फटे हुए डिंब-कोष में रक्त भर जाता है, और कुछ समय पर्यन्त इसी का एक पीले रंग का पिण्ड-सा बन जाता है, जिसे पीतांग (Corpusluteum) कहते हैं। यदि डिंब कोष से निकले हुए डिंब और शुक्र-कीट के संयोग से गर्भ-स्थिति हो जाये, तो इन पीतांग में एक विचित्र परिवर्तन होने लगता है। और यह पीतांग क्रमशः बड़ा हो जाता है। यदि गर्भ स्थित हो, तो यह पीतांग कुछ समय बाद सिकुड़ कर श्वेत हो जाता है, और तब वह श्वेतांग कहलाता है डिंबग्रंथि से एक स्नायु गर्भाशय के एक कोने तक जाकर गोल स्नायु से मिल जाता है। इसे डिंबग्रंथि-स्नायु कहते हैं।

५—डिंब (Ovum)—प्रत्येक डिंब $\frac{1}{120}$ इंच का एक गोल सेल (cell) होता है। यह प्रति मासिक-धर्म के साथ-साथ एक

डिंब-ग्रंथि में तैयार होता है। यह डिंब इतना सूक्ष्म होता है कि आँखों से दिखलाई नहीं देता। जब मासिक-धर्म प्रारंभ होता है, तब से इसका भी बनना शुरू हो जाता है, और डिंब-प्रणाली द्वारा गर्भाशय तक आने में बारह से चौदह दिन का समय लग जाता है—कभी-कभी इससे कुछ अधिक भी।

गर्भ-धारण

मासिक-धर्म के पश्चात्, सहवास करते समय जब पुरुष के शिश्न से वीर्य निकलकर स्त्री की योनि में गिरता है, और इस वीर्य में स्वस्थ और सबल शुक्र-कीट (Spermatozoa) होते हैं, जब उनमें से किसी एक शुक्र-कीट का स्त्री की डिंब-ग्रंथि से निकले हुए डिंब के साथ संयोग हो जाता है, तब उससे गर्भधारण होता है। जब तक शुक्र-कीट और डिंब का गर्भाशय में संयोग नहीं होता, तब तक गर्भ-स्थिति भी नहीं हो सकती। एक ही शुक्र-कीट डिंब में प्रवेश करके गर्भ धारण करा देता है।

गर्भ लक्षण

जब गर्भ रह जाता है तो चतुर-गृहिणी तुरन्त जान जाती है कि अब गर्भाधान हो चुका है। मन में ग्लानि या स्फुरती होना, अङ्ग-अङ्ग में शिथिलता आ जानी, नाभी में गुदगुदाहट-सी लगनी, तृषा अधिक लगनी, जी मतलाने लगना, कुछ-कुछ उलटी-सी होनी—ये लक्षण गर्भवती में तत्काल होने लगते हैं।

दाँतों के अग्रभाग का श्याम हो जाना, शरीर में रोमांच तथा सिहरन-सी होनी, पथ्य-भोजन से अरुचि और मिट्टी की इच्छा, कोयले

आदि अभक्ष्य-पदार्थों से प्रेम, वमन व मुँह में बार-बार पानी का भर जाना, देह जड़वत् जान पड़नी, उत्तमोत्तम खाद्य-पदार्थों से भी घृणा होने लगना इत्यादि कुछ कालोपरान्त होते हैं।

कुचों के अग्र-भागों का काला होना, उनमें दूध आना, पेट में फड़कन होना—ये लक्षण पाँचवें मा . से होते हैं।

रज का आना, गर्भ-धारण करने के दूसरे मास से ही बंद हो जाता है। गर्भवती-स्त्री की नाड़ी भी तीव्र चलने लगती हैं। मस्तक हर समय भार ग। री रहता है और रति से प्रायः घृणा हो जाती है।

उपरोक्त लक्षण जब किसी स्त्री में दिखाई देने लगें, तब जान लेना चाहिये कि वह गर्भ धारण कर चुकी है। यदि ऐसा हो, तो उसके बाद ही गर्भ-रक्षा के उपाय। करना आरंभ करदो।

३

गर्भ-विज्ञान

नैन छिपाय न छिपै, कर घूंघट की ओट।
चतुर नारि औ शूरनर, करैं लाख में चोट।
करैं लाख में चोट, नारि बेटे को जन्म देती है।
बेटा जो हुआ सच्चरित्र, कष्ट वह प्रीतम के हर लेती है॥

कई बार ऐसा भी होता हुआ देखा गया है, कि स्त्रियों का पेट बाहर निकल आता है, हाथ-पाँव कृश हो जाते हैं, प्रायः पेट में हलचल-सी रहा करती है, कइयों का मासिक-धर्म तक भी होना बंद सा हो जाता है—यह गर्भ नहीं, एक प्रकार का रोग है, जिसे जलधर कहते हैं। ऐसे समय में गर्भ है या नहीं, यह जानना बड़ा कठिन-सा हो जाता है। अतः परीक्षार्थ कुछ क्रियायें नीचे लिखी जाती हैं, इससे पता लगावें।

लहसन के रस में वस्त्र या रुई भिगोकर सुधा समय स्त्री की

योनि में रखे, यदि स्त्री को सुगन्ध आवे और मुँह से लहसुन का स्वाद आवे तो गर्भ नहीं है और सुगन्ध या स्वाद न ज्ञात पड़े तो जाने कि गर्भ है। दूसरी तरकीब यह है कि स्त्री को एक दिन निराहार रख कर उसे चादर ओढ़ा दे और किसी सुगन्धित पदार्थ की धूनी देवे। यदि उसे सुगंध आवे तो जानना कि गर्भाधान हो चुका है और यदि सुगंध न आवे तो गर्भ नहीं है।

भ्रूण—यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि पुरुष के शुक्र-कीट तथा स्त्री के डिंब के संयोग से गर्भाधान होता है। इस गर्भाधान से जो वस्तु तैयार होती है, उसे भ्रूण कहते हैं। अब डिंब में विचित्र परिवर्तन आरंभ हो जाता है। भ्रूण की मींगी (Nucleus) और कलल-रस (prtoplasm) जिससे भ्रूण आवृत रहता है। दो भागों में विभक्त हो जाती है। इसी प्रकार वह क्रमशः ४, ४ से ८ और ८ से १६ 'सेलों' (cells) में विभक्त हो जाती है। यह 'सेल'-रचना इतनी शीघ्रता से होती है कि प्रथम २४ घन्टे में सैकड़ों सेलें बन जाती हैं। इस सेल-समूह को कलल (Mirula) कहते हैं। इस कलल के भीतर एक खोखला स्थान पैदा होता है, और इसमें कुछ तरल इकट्ठा होने लगता है, इसके दबाव से बाहर की सेलों से पृथक हो जाती हैं। इस अवस्था को बुद्बुद् (Blastocveol) कहते हैं। भ्रूण सेल को बुद्बुद् बनने में सात दिन लगते हैं, और इस दशा में यह भ्रूण डिंब-प्रणाली से गर्भाशय में प्रवेश करता है। बुद्बुद् के भीतर की सेलों से भ्रूण का शरीर बनता है। बाहर की सेलों से भ्रूण को ढाँपने वाली झिल्ली बनती है। फिर भी सेलों में, एक

ऊपर और एक नीचे, दो खोखले स्थान पैदा होते हैं। और जहाँ ये दोनों मिलते हैं, भ्रूण की उत्पत्ति होती है। यही भ्रूण क्रमशः बढ़ता हुआ ठीक समय पर बच्चा बन जाता है। सृष्टि-कर्ता ने माता के गर्भ में ऐसी उचित व्यवस्था की है, जिससे भ्रूण की गर्भ में पूर्णतया रक्षा होती रहती है।

नाल क्या है—नाल(Umbilical cord) लसदार पदार्थ, नाभी, रक्त-वाहिनियाँ, भ्रूण के निचले स्थान के शेष भाग आदि से निर्मित होता है। पूरा नाल प्रायः छः सप्ताह के अन्त तक बनता है।

गर्भोदक या एक विशेष तरल पदार्थ (Liquoramni) जब गर्भ पूर्ण हो जाता है, तो गर्भोदक या तरल पदार्थ की मात्रा १० से २५ छटाँक तक हो जाता है। ५ छटाँक से कम या ३० छटांक से अधिक रोग का लक्षण है। इसका रंग हलका-पीला-सा होता है। गर्भोदक के कार्य ये हैं—(१) भ्रूण को आघात से बचाना, (२) भ्रूण की उष्णता को स्थिर रखना, (३) प्रसव के समय गर्भाशय की ग्रीवा को फैलाना, (४) भ्रूण पर चारों ओर के दबाव को समान करना और (५) बालक के जन्म से पूर्व तथा पश्चात् प्रसव मार्ग को धो देना। चतुर-गृहिणी प्रसव के समय इसका पूरा-पूरा ध्यान रखती हैं।

कमल क्या है?—कमल निम्न-लिखित अवयवों से बनता है। भ्रूण बाह्यावरण का अंकुर विशिष्ट भाग, भ्रूण के नीचे की गर्भ-कला (Piacenta) (गर्भाशय की गर्भाधान के पश्चात् श्लैष्मिक-कला का परिवर्तित रूप गर्भ-कला होती है), इन दोनों के बीच के पीछे

स्थान, जिनमें माता का रक्त रहता है। कमल तीसरे मास तक सम्पूर्ण बन जाता है। कमल में जो बाह्यावरण के अंकुर होते हैं, वे दो प्रकार के होते हैं। एक तो गर्भाशय की दीवार को पकड़ने वाले और दूसरे जो आशयों में लटकते हैं और पोषणार्थ होते हैं। साधारण दशा में भ्रूण और माँ का रक्त-संचार परस्पर नहीं मिलते। गर्भ-पूर्णता पर कमल का व्यास ६ इंच होता है, और मध्य में पौन इंच मोटा होता है। नाल इसके केन्द्र के समीप लगा रहता है। कमल का भार प्रायः भ्रूण का $\frac{1}{6}$ होता है। भ्रूण को सुरक्षित रखने, ठीक समय पर भोजन पहुंचाने का काम यह कमल ही करता है।

कमल के कार्य—(१) श्वासोच्छ्वास-क्रिया—अर्थात् भ्रूण के रक्त से कार्बन द्वि ओषिद माँ के रक्त में भेजना और माँ के रक्त से ओषजन भ्रूण के रक्त में भेजना, (२) पौष्टिक-पदार्थों को माता के रक्त से भ्रूण के रक्त में भेजना, (३) मलीन पदार्थों को भ्रूण के रक्त से माता के रक्त में भेजना, (४) अनावश्यक और अनिष्ट पदार्थों को माता के रक्त से भ्रूण के रक्त में न आने देना। भ्रूण को सबल, सशक्त एवं विकार-रहित रखने में कमल का महत्त्वपूर्ण हाथ है।

गर्भाकार

१—पहले दिन—$\frac{५}{२००}$ इंच से कुछ बड़ा होता है। एक दाग के समान कुछ उभरा हुआ।

२—पाँचवें दिन—पानी के एक छोटे बुलबुले के समान।

३—आठवाँ दिन—कफ की एक गाँठ के समान। लम्बाई $\frac{१}{६०}$ इंच, तथा वजन १ ग्रेन।

४—पंद्रहवाँ दिन—लम्बाई $\frac{१}{२२}$ इंच—तथा वजन $\frac{१}{२}$ रत्ती।

५—तीसरा सप्ताह—वजन गेहूं के चार दानों के बराबर।

६—चौथा सप्ताह—आकार कीड़े के समान टेढ़ा। सिर और पाँव भी बनने लगते हैं। लम्बाई $\frac{१}{३}$ से $\frac{१}{२}$ इंच तक।

७—छठा सप्ताह—इस समय सिर शरीर से बड़ा हो जाता है। आँख, कान, नाक, मुँह के स्थान पर काले काले दाग होते हैं।

८—सातवाँ सप्ताह—छाती का ढाँचा, जबड़े, 'पसल', हड्डी बनने लगती है। हृदय बढ़ता है। सिर कुछ बड़ा हो जाता है। हाथ-पर बनने लगते हैं। आँख, कान, मुँह और नाक के चिन्ह स्पष्ट दिखलाई देने लगते हैं। लम्बाई एक इंच होती है।

९—आठवाँ सप्ताह—हाथ, पाँव, पंजे, मुँह, नाक और कान साफ दिखाई देते हैं। मुँह कुछ बड़ा। लम्बाई २ इंच। वजन २ तोले आकार मुर्गी के अंडे के समान।

१०—नवाँ सप्ताह—आँख बढ़ती है, पलकें दिखाई पड़ती हैं। लम्बाई सवा दो इंच। वजन ३ तोले।

११—दसवाँ सप्ताह—गला साफ दिखाई पड़ता है। लम्बाई ढाई इंच। वजन साढ़े चार तोले।

१२—ग्यारहवाँ सप्ताह—पलकें तैयार हो जाती हैं, पर बन्द रहती हैं। नाक के छिद्र बन जाते हैं। ओठ दिखाई पड़ते हैं, पर मुँह बन्द रहता है। कलेजा तैयार हो जाता है। लम्बाई ३ इंच वजन ६ तोला।

१३—बारहवाँ सप्ताह—हाथ-पांव अंगुलियां सहित साफ दिखाई पड़ते हैं। लड़का लड़की का अन्तर स्पष्ट होने लगता है। नाभि में भ्रूण तक रक्त पहुँचाने वाली नाल साढ़े तीन इंच लम्बी होती है। कमर एवं पाँव की पिंडरियाँ बनने लगती हैं वजन १० तोले। लम्बाई ४ इंच।

१४—चौथा महीना—रग-पट्ठे दिखाई देते हैं। चेहरा लम्बा हो जाता है। फेफड़ा भी तैयार हो जाता है। बालक का हिलना भी कुछ-कुछ जान पड़ता है। लम्बाई ६ इंच, तथा वजन २० तोले तक हो जाता है।

१५—पाँचवां महीना—सिर पर पूरे बाल उग आते हैं। चमड़ी चिकनी होती है। रग पट्ठे मजबूत बन जाते हैं। बच्चा अक्सर हिलता है। लम्बाई १० इंच तथा वजन ३० तोले तक हो जाता है।

१६—छटा महीना—ऊपर की चमड़ी तैयार होती है। अँगुलियों में नाखून उगते हैं। लम्बाई एक फुट तथा वजन एक सेर।

१७—सातवाँ महीना—इस मास के अन्त तक शरीर के सब अङ्ग बन जाते हैं। बच्चा गर्भाशयमें उलटा हो जाता है। बोझ के कारण पाँव ऊपर और सिर नीचे हो जाता है। पलकें खुलने लगती हैं। यदि इस आयु का बालक जीवित उत्पन्न हो, तो कुछ दिन उसके जाने की संभावना हो सकती है, पर वह अधिक दिन जीवित नहीं रहता। लंबाई १४ इंच। वजन १॥ सेर।

१८—आठवाँ महीना—सब अंग पुष्ट होते हैं। चेतनता आती है। लम्बाई १॥ फुट और वजन २॥ सेर।

१९—नवां महीना—इस समय बालक का शरीर पुष्ट होता है। लंबाई २० इंच तक, और वजन तीन से पाँच सेर तक हो जाता है।

२०—दसवाँ महीना—बालक की लम्बाई बीस इंच के लगभग होती है। बालक का पूर्ण विकास हो जाता है। इस मास में बालक के पैदा होने की पूरी सम्भावना होती है।

गर्भ-धारण के दिन से लेकर बालक के पैदा होने तक प्रायः दो सौ अस्सी दिन, अर्थात् नौ महीने दस दिन लगते हैं। कभी-कभी इससे अधिक दिन भी लग जाते हैं, और कभी इससे कम दिन भी।

दिनचर्या

गर्भ-धारण के पश्चात्, गर्भवती के सिर पर उत्तरदायित्वों का

एक भार आ पड़ता है; और ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसकी जिम्मेदारियाँ भी बढ़ती जाती हैं। अभी तक तो उसे केवल अपने शरीर की ही सँभाल रखनी पड़ती थी, किन्तु अपने तथा गर्भस्थ बालक की हित-कामना और रक्षा के लिये यत्न करना पड़ता है। अतः गर्भवती स्त्री को गर्भावस्था में विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है। माता को सदैव यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि जैसे उसका स्वास्थ्य, शरीर और मन होगा, वैसा ही उसके बालक का भी होगा। यह तो प्रमाणित है कि गर्भवती माँ की जीवनचर्या का गर्भस्थ बालक पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। माँ को अपने स्वास्थ्य की ओर सब से अधिक ध्यान देना चाहिये।

भोजन—स्वास्थ्य की रक्षा के लिये भोजन सबसे अधिक आवश्यक है। भोजन हलका, पचनशील और पौष्टिक होना चाहिये। दूध, घी, फल, मेवा, दही और शाक-भाजी अधिक परिमाण में खानी चाहिये। फलों का रस भी पीना चाहिये। जल अधिक पीना चाहिये। क्योंकि गर्भस्थ बालक को जल की अधिक आवश्यकता होती है। भ्रूण एक प्रकार के जल—(गर्भोदक) में अधर लटका रहता है। जल से ही उसकी रक्षा होती है। भोजन सात्विक होना चाहिये। अधिक गरिष्ठ, मसालेदार और गर्म-भोजन हानिप्रद होते हैं। पेट सदैव हलका और साफ रहना चाहिये।

यह सत्य है कि गर्भावस्था में गर्भवती की भोजन-लालसा बड़ी विचित्र प्रकार की होती है। भाँति-भाँति की चीजें खाने के लिये स्त्रियों का मन चला करता है। उनमें विशेष रूप से खास चीजें

खाने की बड़ी लालसा होती है। उनकी भोजन-लालसा में दो विशेष-तायें दृष्टिगत होती हैं। एक तो उनकी भोजन की लालसा साधारण दशा से बहुत उग्र हो जाती है, और अपने को वश में नहीं रख सकतीं। दूसरे उनमें कभी-कभी ऐसी वस्तुएं खाने की इच्छा पैदा होती हैं, जिन्हें वे गर्भावस्था से पूर्व खाना ही नहीं चाहती थीं। अथवा ऐसी चीजें खाने की इच्छा बलवती हो जाती है, जो खाद्य-पदार्थ नहीं होते।

हमारे देश में गर्भवती स्त्रियों को मिट्टी खाने की बड़ी इच्छा होती है। अनेकों स्त्रियाँ सुराही, कंकड़ तथा हँडिया आदि तोड़कर खा जाती हैं। कोई-कोई गंगा-जमना की रेतीली मिट्टी भी खाती हैं। बहुतेरी चूल्हे की जली मिट्टी बड़े स्वाद से खाती हैं। लखनऊ, बनारस, इलाहाबाद, कलकत्ता आदि नगरों में गर्भवती स्त्री की इस विचित्र इच्छा की तृप्ति के लिये कुम्हार मिट्टी की बहुत पतली-पतली आँवे में पकाई हुई छोटी-छोटी टिकियाँ बेचते हैं। यह टिकियाँ गर्भवती स्त्रियों के सिवाय और किसी के काम नहीं आतीं। लखनऊ में इन्हें सनकिया कहते हैं। मिट्टी के अलावा खड़िया और कोयला आदि भी खाया जाता है। सोंधी चीजें और बे-फसल के फलों की उनमें विशेष इच्छा होती है। इसके अतिरिक्त गर्भवती में उन चीजों के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है, जिन्हें वह गर्भावस्था से पहिले बड़े चाव से सेवन करती थी। मिट्टी आदि सेवन करना बड़ा हानिकारक है।

भारतीय आयुर्वेद के ग्रन्थों में यह बतलाया गया है कि 'दौहृद' —गर्भवती की भोजन-लालसा केवल खाने-पीने की तृप्ति की ही नहीं

होती, बल्कि वह शब्द, रस, गन्ध आदि इन्द्रियों के सभी भोगों की होता है। अर्थात् गर्भवती में खाने-पीने के अतिरिक्त कोई विशेष शब्द सुनने, किसी खास चीज को छूने, किसी पदार्थ-विशेष या द्रव या द्रव्य को देखना अथवा किसी विशेष गन्ध को सूंघने आदि बातों की भी लालसायें उत्पन्न हुआ करती हैं। गर्भवती में ये परिवर्तन होने स्वाभाविक ही हैं।

ऐसा कहा जाता है कि बंसलोचन गर्भवती को खिलाने से उसकी मिट्टी खाने की लालसा तृप्त हो जाती है। बंसलोचन 'शीतोपलादि चूर्ण में डाला जाता है। जो गर्भवती बंसलोचन खाती है, उसकी सन्तान गोरी और सुन्दर होती है। कलकत्ता के एक कविराज' का कथन है कि गर्भवती को कच्चे नारियल का गिरि खिलावे और उसका पानी पिलावे, तो सन्तान गोरी होती है। वे स्वयं अनेक स्त्रियों पर इसका प्रयोग आजमा चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि गर्भवती की भोजन-लालसा तृप्त न होने से गर्भस्थ बालक पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु उसकी लालसा-तृप्ति के समय यह ध्यान रखना चाहिये कि गर्भवती कोई अभक्ष्य पदार्थ ग्रहण न करे, अथवा ऐसा पदार्थ सेवन न करे जो हानिकर हो। गर्भावस्था में बहुत सावधानी से रहन की जरूरत है।

मानसिक स्वास्थ्य गर्भवती को अपने शारीरिक स्वास्थ्य का जितना ध्यान रखना चाहिये, उतना ही अपने मानसिक स्वास्थ्य का भी। मन को बहुत पवित्र रखना चाहिये। सदैव प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। काम-क्रोध से सदैव दूर रहना चाहिये। माता के विचारों का

गर्भस्थ बालक पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। गर्भावस्था में गर्भिणी को सत्साहित्य, वीर-पुरुषों का जीवन-चरित्र, महात्मा और ऋषियों के अमृतमय उपदेश, प्रसिद्ध देशभक्तों, राजनीतिज्ञों और वैज्ञानिकों के साहसपूर्ण जीवन-चरित्र, आदर्श महापुरुषों की कथायें तथा उनके साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। चिन्ता, शोक, ग्लानि, घृणा, ईर्ष्या-द्वेष आदि मनो-विकारों को कदापि अपने हृदय में स्थान न देना चाहिये। इस तरह हर प्रकार से अपने जीवन को पवित्र और ऊँचा बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। मनचाही सन्तान पैदा करना माँ के ऊपर निर्भर है। माँ चाहे, तो अपनी सन्तान वीर, सदाचारी, विद्वान्, सुन्दर, तेजस्वी और कान्तिवान बना सकती है।

विश्राम और शयन—गर्भवती को विश्राम और शयन की अधिक आवश्यकता होती है। रात्रि में पूरी नींद लेनी चाहिये। रात को ठीक नौ बजे सो जाना चाहिये। अधिक देर तक निशा-जागरण स्वास्थ्य और भावी-सन्तान के लिये हानिकर है। परंतु दिन भर पलंग पर पड़े रहना ठीक नहीं। इससे मा और बच्चे, दोनों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। जो मातायें गर्भावस्था में गृह के साधारण काम-काज करना त्याग देती हैं, और सिर्फ बैठी रहती या पलंग पर लेटी रहती हैं, उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है, और फलतः प्रसव के समय उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। जो मा अपना दैनिक गृह-कार्य बड़ी फुर्ती से करती और प्रत्येक कार्य में दिलचस्पी लेती हैं, उनकी मांस-पेशियाँ मजबूत रहती हैं, और शरीर में क्रिया-शीलता रहती है। प्रसव के समय उन्हें विशेष कष्ट नहीं भोगना पड़ता। यदि अन्य सब बातें ठीक हों,

तो ऐसी मा का बालक अधिक बलवान और क्रियाशील उत्पन्न होगा। गर्भवती को कभी भी आलस्य न करना चाहिये। हाँ, इतना परिश्रम न किया जाये, जिससे अपने स्वास्थ्य या गर्भ को हानि पहुंचने का भय हो।

व्यायाम—गर्भवती को व्यायाम न करना चाहिये। उसे दौड़ना, कूदना, उछलना, लपक कर चलना और अपने शरीर को झटका कदापि न देना चाहिये। कोई ऐसा कार्य भी न करें, जिससे उदर या गर्भाशय पर दबाव पड़े, भारी चीजें भी न उठावे।

वस्त्राभूषण—वस्त्र बहुत ही सादे, हलके और ढीले हों। ऐसे वस्त्र न पहने, जो शरीर से बिलकुल चिपटे रहें। कमर में साड़ी इतनी ढ ली बाँधे, कि उदर पर उसका दबाव जरा भी न पड़े—नीचे पेटीकोट भी पहना जा सकता है, परंतु वह ऐसा हो, जिससे गर्भस्थ बालक को दबाव पड़ने से हानि कदापि न पहुँचे।

दांपत्य-विज्ञान की आचार्या डा० मेरी स्टोप्स् के शब्दों में गर्भवती के वस्त्र इतने ढ ले और हलके होने चाहिये कि कपड़ों के नीचे, यदि नग्न शरीर पर तितली भी चले, तो उसके पर न टूटने पायें।

शुद्ध जल-वायु—गर्भवती को शुद्ध जलवायु का सेवन करना नितान्त आवश्यक है। प्रभातकाल में वाटिका, पार्क या उपवन में भ्रमण अवश्य करना चाहिये। टहलते समय धीरे-धीरे चलना ठीक है।

गर्भावस्था में संभोग वर्जित है

गर्भावस्था के आरंभिक दिनों में गर्भवती को भोग-वासना की इच्छा होती है। परन्तु इन दिनों में संभोग कदापि न करना चाहिये। गर्भवती

के साथ मैथुन करने मे निम्न-लिखित हानि होने का भय है।

१—*गर्भवती से मैथुन के समय गर्भाशय* के हिल-डुल जाने से गर्भ स्राव और गर्भपात होने का भय रहता है।

२ स्त्री की जननेंद्रियाँ अधिक कोमल हो जाती हैं, इसलिये उनमें चोट लगने का भय रहता है।

३—शिश्न द्वारा रोग के कीटाणु योनि में प्रविष्ट हो सकते हैं, और इनका दुष्प्रभाव गर्भस्थ बालक पर पड़ सकता है।

४—गर्भाशय में शिश्न से चोट लग जाने का भय है।

इसके अतिरिक्त गर्भावस्था में गर्भवती को अधिक विश्राम करना चाहिये, और यदि संभोग किया गया, तो स्नायु-मण्डल अधिक उत्तेजित हो जायेगा, और उसका फल उसके लिये हानिप्रद होगा। पुरुष को भी चाहिये कि वह स्त्री के गर्भ-धारण के उपरान्त एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहे। नौ मास तो गर्भावस्था और तीन मास प्रसव के बाद भी ब्रह्मचर्य रहना चाहिये, अर्थात् मैथुन कदापि न करना चाहिये।

गर्भावस्था में रोग

गर्भावस्था में भयंकर रोगों का उत्पन्न होना मा के जीवन के लिये ही सांघातिक नहीं होता, बल्कि उससे शिशु का जीवन भी खतरेमें पड़ जाता है। गर्भवती को बिना किसी योग्य, अनुभवी डाक्टर या वैद्य की सलाह किये हुए औषधि न खाना चाहिये। अनावश्यक औषधि-सेवन से गर्भ के लिये हानि की अधिक संभावना है। परन्तु साधारण रोगों के निवारणके लिये औषधि सेवन अवश्य करना चाहिये। सहज उपचार से ही मामूली रोग ठीक हो जाते हैं।

(१) कब्ज Constipation)

गर्भवती को अपना पेट साफ रखना चाहिये। कब्ज दूर करने के लिये विरेचन या जुलाब (purgative) का कदापि सेवन न करना चाहिये। निम्न-लिखित औषधियों का सेवन हितकर है :-

(२) उबकाई या वमन

गर्भवती को पहले चार-पाँच मास तक उलटी या उबकाई आती है। ये प्रायः प्रातःकाल आती हैं। इन्हें अंग्रेजी में 'प्रभात की बीमारी' (Morning sickness) कहते हैं।

१—इसके निवारण के लिये एक उपाय तो यह है कि वस्त्र अधिक हल्के और ढीले पहनने चाहिये, जैसा ऊपर बताया जा चुका है—उदर पर बिल्कुल दबाव न पड़ना चाहिये। २—साठी के चावलों का भात, गाय का दही एवं चीनी के साथ खाना चाहिये। ३—पीपल की छाल पानी में औटा कर छान कर पीना चाहिये। ४—एक चम्मच भर तुलसी के रस में इलायची पीस कर पीना चाहिये, और ५—पक्का केला खाने से भी लाभ होता है।

४

प्रसव

प्रसव-काल होता है कितना, महत्वपूर्ण-संकट-दायक।
माता शिशु-मिलन-घटना, मातृत्व को होती परिचायक॥
यह समय है वह, जब नारी में, भीषण परिवर्तन है होना।
शिशु पालन करने में केवल, वह ईश्वर ही होते सहायक॥

जब प्रसव-काल – बच्चा पैदा होने का समय निकट आता है, तब गर्भवती को अधिक वेदना होती है। वह वेदना के कारण प्रसव के कष्ट से बुरी तरह भयभीत हो जाती है। प्रसव-वेदना आरम्भ होने से पहले गर्भवती का मुख-मण्डल पहले से अधिक सुन्दर प्रतीत होने लगता है; शरीर की रंगत भी निखर जाती है। वह पहले से श्वास भी अधिक तेजी से लेने लगती है। प्रसव-वेदना आरम्भ होने से कुछ घण्टे पहले गर्भवती के पेट का निचला भाग कुछ पिचक जाता है। बालक आठ-दस दिन पहिले ही कटि में उतर आने के कारण, गर्भवती को

सांस लेने में कोई कष्ट नहीं होता। प्रसव-काल में पेट ढीला होकर ऐंठने लगता है, जंघाओं में असह्य पीड़ा होने लगती है। मलमूत्र आदि स्थानों में बोझ पड़ जाने के कारण, बारम्बार मल-मूत्र की शंका होती है। परन्तु मल तो रुका रहता है और मूत्र होता रहता है। कुछ जलन-सी भी हुआ करती है। इस समय पेडू को धीरे-धीरे सेकना और गुदास्थान में अरण्डी (कास्टर-आयल) की पट्टी चढ़ाना उत्तम होता है। प्रसव-काल समीप आने पर स्त्री की पसलियाँ, पीठ की नसों और कमर में कठिन पीड़ा आरम्भ होती है, मूत्र-स्थान में बार बार जाना आकर पीड़ा करता है और मूत्र में रुकावट होती है। इसका कारण यही है कि बच्चा बाहर आने के समय योनि कभी संकोच और कभी विकास पाता है, तब जानना चाहिये अब शीघ्र ही प्रसव होने वाला है। इस समय यदि गर्भवती को जाड़ा लगे, तो गरम-गरम दूध या चाय पिलानी चाहिये और उसे लेटने नहीं देना चाहिये। क्योंकि लेटने से बच्चा योनि में एड़ा-टेढ़ा होकर फंस जाता है, जिस से गर्भवती को प्रसव करते समय बड़ा कष्ट होता है और कभी-कभी तो उसके प्राणों पर भी संकट आ जाता है। टहलते रहने से प्रसव सुखपूर्वक होता है।

धात्री या दाई (बच्चा जनाने वाली) प्रसव-कार्य में प्रवीण होनी चाहिये। प्रसव के समय वह अपने हाथ के नाखुन कटा कर गर्भिणी के पास आवे। प्रसूत-गृह शुद्ध, साफ और खुली हवा आने योग्य होना चाहिये। बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारे देश में प्रसव-कार्य को इतना अशुद्ध मानते हैं कि जिस स्थान पर यह कार्य सम्पा-

दन किया जाता है, वह घर का सब से गन्दा, मलिन और अशुद्ध स्थान होता है। प्रसूता को एक ऐसी कोठरी में डाल दिया जाता है, जहां न प्रकाश ही होता है और न शुद्ध वायु ही। हमारे देश में बढ़ता हुई बाल-मृत्यु का एक प्रमुख कारण सूतिकागार का कुप्रबन्ध भी है। लाहौर के सुप्रसिद्ध सफल भारतीय डाक्टर एन० आर० धर्मवीर ने एक बार लिखा था कि भारत में प्रायः तीस लाख बालक एक बरस के होने से पहले ही मर जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? कारण स्पष्ट है, कि प्रसव काल में न तो गर्भिणी का उचित देखभाल ही की जाती है और न प्रसव कराने की उचित व्यवस्था ही। परिणाम यह होता है कि इन त्रुटियों के कारण शिशु और माता दोनों का जीवन खतरे में पड़ जाता है। चाहिये तो यह कि सूतिकागार दस-पन्द्रह फीट चौड़ा और कम से कम इतना ही लम्बा हो। कमरे का फर्श सूखा, गोबर-मिट्टी से लिपा हुआ, खिड़कियें और रोशनदान हों, दीवारें साफ या चूने से पुती हुई तथा कमरे में अनावश्यक वस्तुओं का कहीं चिन्ह तक न हो। प्रसूता के लिये पलंग, तथा उस पर जो बिछौना बिछाया जाय, वह बिल्कुल साफ और शुद्ध हो। कमरे का फर्श और दीवारें यदि रस कपूर के पानी से धो दी जायें, तो और भी अच्छा हो।

प्रसूतागार में कौन कौन सी चीजें होनी जरूरी हैं? प्रसव के पूर्व ही निम्न-लिखित सामग्री जुटाकर एक मेज या आलमारी में रख देना चाहियें, जिससे समय पड़ने पर उनके लिये इधर उधर भटकना न पड़े।

१—एक लम्बा-चौड़ा खूब कसा हुआ पलंग, (जिस पर प्रसविनी को आराम से लिटाया जा सके।

२—एक गद्दा, दरी और एक-दो कम्बल, (यदि शीतकाल हो तो रजाई या गर्म-कपड़े और होने चाहियें)।

३—दो क्लाथ के टुकड़े (मैकिनटोश या मोमजामा), तथा बच्चे के लिये पतले और कोमल वस्त्र।

४—बिस्तर पर बिछाने के लिये तीन-चार चादरें।

५· बच्चे का पेट बाँधने के लिये पट्टी, बच्चे के शरीर पर मालिश करने के लिये मीठा, नारियल का तेल, कार्बोलिक साबुन। बच्चे को स्नान कराने के लिये दो टब, अलमोनियम की एक बड़ी कटोरी, एक कैंची, बच्चे के नाल बाँधने के लिये पतला फीता, एक गज आयल-क्लाथ, प्रसूता का पेट बाँधने के लिये तीन गज कपड़ा, सेफ्टी-पिन एक दर्जन, रक्त पोछने के लिये शुद्ध कपड़े, पाइसोल एक औंस, टिंचर आयोडीन एक औंस, बोरिक-काटन (रुई) एक पैकेट, बोरिक पाउडर डेढ़ औंस, पानी गरम करने के लिये दो-तीन बर्तन, एक अँगीठी और एक ब्रुश। प्रसूतागार में मिट्टी का तेल न जलावें, सरसों के तेल का प्रयोग उत्तम है।

प्रसव की तैयारी

प्रसव से पहले यह बहुत जरूरी है कि चतुर, अनुभवी तथा कुशल धात्री को बुला लिया जावे। मूर्ख दाइयों के कारण मा के प्राण संकट में पड़ जाते हैं और नवजात शिशु का जीवन खतरे में। इन मूर्ख दाइयों की अज्ञानता और असावधानी से स्त्रियों को अनेकों रोग लग जाते हैं, जिनसे फिर जीवन भर छुटकारा नहीं मिलता। प्रसव-कार्य में शुद्धता की सब से अधिक आवश्यकता है। संक्रामक रोगों और रोगों

के कीटाणुओं से रक्षा का प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है, परन्तु मूर्ख और अशिक्षित दाइयाँ इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देतीं। तीन स्थानों से विष या रोग-कीटाणु स्त्री के शरीर में प्रवेश कर सकते हैं—

(१) धात्री के हाथों या वस्त्रों से, (२) धात्री के यन्त्र (चाकू) कैंची आदि) से और (३) गर्भवती के प्रसव-द्वार से।

धात्री का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह सब से पहले प्रसूता के प्रयोग में आनेवाली चीज़ों और वस्त्रों को बिल्कुल शुद्ध करले। अपने हाथों से अँगूठी या चूड़ियाँ उतार कर काम करे। हाथों को भली भाँति साबुन से साफ करले। नाखूनों को बिल्कुल काट लेना चाहिये। हाथों को प्रसव-द्वार लगाने से पहले उनमें 'टिंचर आयोडीन' अवश्य मल ले।

इसके उपरान्त निम्न-लिखित लोशन तैयार कर बोतलों में रखले, और प्रत्येक पर नाम आदि भी लिख दें।

१—लाइसोल-लोशन—इसमें डुबाने से हाथ चिकना होता है और तेल-जैसा काम देता है। दस छटाँक पानी में दो चम्मच 'लाइसोल' डालने से यह लोशन तैयार होता है। यह हाथ, यन्त्र और प्रसव-स्थान धोने के काम आता है।

२—बोरिक-लोशन—दस छटाँक पानी में एक औंस बोरिक-एसिड घोलकर बनाया जाता है। यह बच्चे का मुँह, आँख और प्रसूता के स्तन धोने के लिये होता है। जल थोड़ा गरम ही रखें तो ठीक है।

३—आयोडीन-लोशन—दस छटांक पानी में दो चम्मच आयोडीन मिलावें। यह भी धोने के काम आता है।

४—कास्टिक-लोशन—आधी छटाँक गुलाब-जल में ढाई रत्ती कास्टिक मिलाकर लोशन तैयार करें। यह लोशन, नवजात-शिशु का स्नानादि कराने के पश्चात्, एक-एक बूंद उसकी दोनों आँखों में डालना चाहिये।

प्रसव कैसे हो?

चतुर दाइयाँ पेट की हालत देखकर ही यह बतला देती है कि गर्भाशय में बालक किस दशा में है—बालक के पहले पैर निकलेंगे या सिर। नियम तो यह है कि बालक का पहले सिर प्रसव-द्वार से निकलता है, और यदि गर्भाशय में बालक की स्थिति ऐसी हो कि पहले सिर न निकले, तो अविलम्ब किसी डाक्टरनी को बुलाना चाहिये—यदि उस समय डाक्टरनी न आ सके, तो दाई को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, कि जिससे बालक अपनी स्वाभाविक दशा में बाहर निकले। यदि पेट के ऊपर से नीचे की ओर खड़ा रहे, तो जानें कि उसका सिर या पैर निकलेंगे। यदि वह आड़ा हो, तो समझले कि उसके हाथ पहले निकलेंगे। डाक्टरनी को, यदि हो सके, तो बच्चा निकलने के पूर्व ही बुला लेना चाहिये। सिर यदि सात-आठ मिनट तक भी बाहर न निकले, तो बच्चा मर जायेगा। सिर का तालू मुख से पहले निकलना चाहिये। इस कार्य में अतिशय सावधानी की आवश्यकता है। बच्चे को अपनी तरफ से अधिक खींचातानी कदापि न करे।

प्रथम अवस्था—जब तक गर्भाशय का द्वार न खुले, तब तक निम्न-लिखित उपचार करने चाहिये।

१—गर्भवती को पलंग पर न लेटने दें। इधर-उधर घूमते ही रहना चाहिये।

२—कांखना न चाहिये।

३—पेशाब बार-बार करना चाहिये।

४—इस समय दूध सेवन कराना चाहिये और शीतल, हलके पदार्थ।

५—गर्भाशय को अधिक न दबाना चाहिये।

द्वितीय अवस्था—गर्भाशय का द्वार खुल जाने पर क्या करे—

१—गर्भिणी को चित्त या बायीं करवट—जैसा अच्छा लगे धीरे से लिटा दें।

२—इसे खाने के लिये कुछ न देना चाहिये। केवल जल या चाय दे।

३—जब बच्चा प्रसव हो, तो गर्भिणी को बायीं करवट सोना चाहिये। वेदना उठे, तो गर्भिणी को चिल्लाना चाहिये—और दाई को बड़ी सावधानी से बच्चे का सिर निकालना चाहिये।

४—कमर और पैरों को दबाना चाहिये।

५—सिर निकलते ही बोरिक-लोशन में भिगोई रुई से आँख और पलकें धीरे-धीरे पोंछे। एक कपड़े से गला, नाक, कान और मुँह आदि को साफ करें। पश्चात् उसका अंग-प्रत्यंग साफ कर देना चाहिये।

६—नाल बच्चे के सिर के सामने हो। वह बच्चे के शरीर में लिपटी हुई न हो। नाभि से चार अंगुल छोड़कर नाल को एक रेशमी धागे से मजबूत बाँध दें, और पहली गाँठ से चार अँगुल के फासले पर

फिर एक गाँठ और उसी प्रकार मजबूती से बाँध दें। पश्चात् दोनों गाँठों के मध्य में एक तेज कैंची से नाल को काट दें। इस कटे हुए भाग पर थोड़ा-सा बोरिक-पाउडर भर कर—ऊपर साफ, मुलायम कपड़े का टुकड़ा रखकर पट्टी से बाँध देना चाहिये। यदि—'बच्चे के नाल में एक कण कस्तूरी तथा जरा-सा राय-सिंदूर भरकर सेक दें, तो बालक सदा के लिये पित्त-प्रधान प्रकृति का हो जाता है, और कफ या वात उसे जीवन में बहुत ही कम सताने की सम्भावना है।

७—जब बच्चा भूमि पर आजाये, तो उसे रोना अवश्य चाहिये। यह स्वाभाविक ही है।

यदि बच्चा कुछ देर तक रोवे नहीं, तो यह समझना चाहिये कि उसका श्वास रुका हुआ है।

खास बात

"जिस बच्चे का शरीर श्वेत और पीला पड़ जाये, श्वास लेने की कोई चेष्टा न करे, दबाने पर नाल भली भाँति धुक-धुक गति से न चले, हाथ-पांव निकम्मे से जान पड़ें, और उसका मुँह भी न हिले, तो यह अवस्था बड़ी शोचनीय हुआ करती है। ऐसी अवस्था का बच्चा प्रायः बचा नहीं करता। यदि बच्चे का रँग नीला हो जाये, श्वास लेने को चेष्टा करे—तब एक स्त्री प्रसूता का पेट पकड़ ले, और दाई बच्चेके गले में अँगुली डालकर घड़घड़ी हटा दे, अथवा पैरों को पकड़ सिर को नीचा करके कुछ थोड़ा झुका रक्खे, ऐसा करके पीठ पर कई थपटें लगावे तथा आँख और मुँह पर शीतल जल का छींटा दे। इस क्रिया से बच्चा रो पड़ेगा, और सांस भी लेने लगेगा।"

८—प्रसव के बाद जननी को पलंग पर शान्तिपूर्वक लिटा देना चाहिये। बच्चा पैदा हो जाने के एक या डेढ़ घन्टे बाद फूल झरता है—इसको खेड़ी, आँवल या आयर भी कहते हैं। इसमें भीतर का रक्त-मल इत्यादि लगा रहता है। यह जब तक न गिरे, पेट बराबर दबाये रखना चाहिये। इस प्रकार दबाये रखने से वह धीरे-धीरे खुद ही नीचे उतर आयेगा। इस समय यह समझ लेना चाहिये, कि आँवल गर्भाशय से छूट चुका है। इसे बड़ी सावधानी से पूरे का पूरा ही पेट से बाहर निकाल देनी चाहिये। इसका ज़रा-सा भी अंश भीतर न रहने पाये। फूल के पूरा निकल जाने पर गर्भाशय अपने आप ही संकुचित हो जाता है। इसकी सफाई करके पेट पर पट्टी बाँध देनी चाहिये।

९—इसके बाद प्रसूता सुखपूर्वक विश्राम करे। उसके विश्राम में किसी तरह की बाधा नहीं पहुंचनी चाहिये।

१०—प्रसवद्वार अधिक फट तो नहीं गया है, इसकी जाँच करना भी जरूरी है। यदि आधा अंगुल से अधिक फट गया हो, तो किसी डाक्टरनी को बुलाकर उसे सिलवा देना चाहिये। अब प्रसव-कार्य खतम है।

शिशु-पालन

यदि माँ पूर्ण स्वस्थ है, और उसका दूध विकार-रहित—तो माँ को अपने स्तन का ही दूध बच्चे को पिलाना चाहिये, क्योंकि शिशु के लिये माँ के दूध से बढ़कर और कोई भोजन ऐसा नहीं, जो उसके लिये लाभदायक हो। प्रसव होने के प्रथम दो दिन माँ के स्तनों में शुद्ध दूध नहीं आता; बल्कि उसके स्थान पर लसदार दूध निकलता है।

प्रकृति ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि जैसे ही शिशु जन्म लेता है, उसी समय उसके भोजन की भी व्यवस्था तैयार मिलती है। इस दूध को व्यर्थ या हानिकर नहीं समझना चाहिये। इसे दो दिन तक शिशु को छः-छः घण्टे बाद पिलाना चाहिये। प्राय तीसरे दिन स्तनों में शुद्ध दूध आ जाता है—तब, तीसरे दिन से बच्चे को यह शुद्ध दूध ही पिलाना आरम्भ कर देना चाहिये।

स्तन कैसे पिलावें? नई माता के लिये इसका सीखना भी बहुत जरूरी है। यदि शिशु पहले दिन अपने मुख से स्तन न खींच सके, तो आधी छटाँक पानी में एक चम्मच मिश्री या थोड़ा-सा शहद मिलाकर दो-तीन चम्मच छः-छः घण्टे बाद देना चाहिये। दूसरे दिन चार-चार घण्टे बाद दूध पिलावें। तीसरे दिन से तीन मास तक तीन-तीन घण्टे बाद प्रातः दस से रात तक छः बार; और रात के दस बजे से प्रातः छः बजे तक केवल एक बार—अर्थात् कुल सात बार स्तन-पान कराना चाहिये। बच्चा रोने पर, उसे चुप कराने के लिये, उसके मुँह में स्तन दे देना ठीक नहीं। इससे बालक को अजीर्ण और पेट के रोग हो जाते हैं। एक स्तन दस मिनट से अधिक न पिलाना चाहिये। बच्चा स्तन को मुँह में लगाकर न सो जाये, इस बात का माँ को सदैव ध्यान रखना चाहिये। इससे कभी-कभी सोती हुई माँ के स्तन के दबाव से बच्चा मर जाता है। स्तन और मुख भी अशुद्ध हो जाते हैं। माँ को बैठकर तथा बच्चे को गोद में लेकर स्तन-पान कराना चाहिये। एक हाथ से उसका सिर पकड़ ले और दूसरे हाथ से स्तन उसके मुँह में दे। स्तन-पान कराने के पूर्व स्वच्छ जल से स्तनों को अवश्य धो

लेना चाहिये। एक बात और माता को ध्यान में रखनी चाहिये। वह यह कि लेटे-लेटे कभी दूध न पिलावे।

साधारणतया स्तन-पान निम्न-लिखित नियमानुसार कराना चाहिये—

प्रथम दिन—दिन में प्रातः छः बजे से रात के दस बजे तक, चार बार छः-छः घंटे बाद।

द्वितीय दिन— ,, ,, ,, ,, छः बार चार-चार घंटे बाद।

तीसरे दिन से तीन मास तक } ,, ,, ,, ,, { सात बार तीन-तीन घंटे बाद

तीन मास के बाद — ,, ,, ,, ,, पाँच बार चार-चार घंटे बाद।

रात्रि समय दस बजे से भोर छः बजे तक, केवल एक बार। माँ के दूध के अभाव में बकरी का दूध बच्चे को पिलाना चाहिये। बकरी के दूध में पानी और शक्कर मिलाकर निम्न-लिखित परिमाण से बच्चे को पिलावें। चम्मच वह होना चाहिये, जिसमें एक बार ढाई तोला दूध आता है।

तीसरे दिन—२-२ घन्टे बाद, दिन में ६ बार (एक बार में २ चम्मच) २४ घन्टे में कुल १२ चम्मच।

चौथे दिन—३-३ घन्टे बाद, दिन में ६ बार (एक बार में ३ चम्मच) २४ घन्टे में कुल १८ चम्मच।

पाँचवे दिन—३-३ घन्टे बाद, दिन में ६ बार (एक बार में ४ चम्मच) २४ घन्टे में कुल २४ चम्मच।

छुटे दिन—३-३ घन्टे बाद, दिन में ६ बार (एक बार में ५ चम्मच)
२४ घन्टे में कुल ३० चम्मच।

७से १४ दिन ३-३ घन्टे बाद, दिन में ६ बार (एक बार में ६ चम्मच)
२४ घन्टे में कुल ३६ चम्मच।

तीसरे सप्ताह, ३-३ घन्टे बाद; दिन में ६ बार (एक बार में ७ चम्मच)
२४ घन्टे में कुल ४२ चम्मच।

चौथे सप्ताह, ३-३ घंटे बाद, दिन में ६ बार एक बार में ८ चम्मच।
२४ घन्टे में कुल ४८ चम्मच।

निम्न-लिखित विधि से गाय का दूध माँ के दूध के समान बनाया जा सकता है—

गाय का दूध १ छटाँक, कॉड-लिवर ऑयल-इमलसन १० बूँद या १ चम्मच, चीनी १ चम्मच पानी डेढ़ छटाँक, चूने का पानी १ चम्मच—इन सब चीजों को मिला देने से गो दुग्ध भी माँ के दूध के समान हो जायेगा।

दूध कैसे रखा जाये ?

पहला उबाल आते ही दूध को ठन्डे पानी में रख दे, जिससे दूध का बर्तन ठन्डा हो जाये। उसी समय बच्चे को कुछ गुनगुना दूध पिलावे। जब दूध बच रहे, तो उसे फिर अंगीठी पर न रखना चाहिये। इससे उसमें रोग-कीटाणु पैदा हो जाते हैं। शीतकाल में दुग्ध-पात्र को ठन्डे जल के बर्तन पर रख दें; और ग्रीष्म-काल में दुग्ध के बर्तन के चारों ओर भीगा कपड़ा लगा कर पानी के बर्तन में रख दे। ऐसा करने से दूध अच्छा रहेगा। बोतल में पिया हुआ दूध बचे, तो फेंक दे।

बच्चे के दूध की मक्खियों से रक्षा करनी चाहिये। दूध पिलाने

के पहले और बाद में दूध की बोतल को भली भाँति साफ कर लेना चाहिये। अच्छा हो यदि बोतल की अपेक्षा केवल चम्मच से ही बच्चे को दूध पिलाया जाये।

किस-किस दशा में स्तन-पान कराना वर्जित है?

१—अग्नि के पास से उठने के पश्चात्। किन्तु आध घन्टे बाद पिला सकती हैं।

२—बच्चे को सेंकने या उबटन लगाने के बाद। आध घन्टे बाद पिलाने में कोई हानि नहीं है।

३—स्नान कराने के तुरन्त बाद या पहले। आध घन्टे पहिले या बाद में पिलाया जाये तो कोई हर्ज नहीं।

४—जब माता को जुकाम हो, या पेट में पीड़ा हो।

५—जब माँ को हैजा, संग्रहणी, यक्ष्मा और चेचक आदि कोई संक्रामक रोग हो गया हो।

६—पेट में कोई भीतरी फोड़ा हो जाये।

७—स्तनों में कोई रोग हो जाये।

शिशु-चर्या

[पांच मास से कम आयु तक]

प्रातः काल ६ बजे—स्तन पान कराके बिस्तर पर सुला दें।

८-१२ बजे—संतरे का रस बच्चे को पिलावें।

८-३० बजे—स्नान करावें। स्नान के पूर्व कुछ देर तक बच्चे को नग्न करके बिछौने पर अपनी इच्छानुसार हाथ-पैर चलाने देना चाहिये।

९ बजे पुनः स्तन-पान करावें।

९-२० बजे — स्तन-पान तक बच्चे को धूप में सुला देना चाहिये।
सोने के बाद थोड़ा जल पिलावें।

१२ बजे—पुनः स्तन-पान करावें।

१२-२० बजे—यदि शीत काल हो, तो शिशु को धूप में सुलाना-
अधिक गर्मी हो, तो नहीं सुलाना चाहिये।
सोकर उठने के बाद थोड़ा जल पिलावें।

दोपर ३ बजे पुनः स्तन-पान करावें।

३ २० बजे—शिशु को घरसे बाहर शुद्ध और खुली वायु में रक्खें।

४-१५ बजे—इस समय शिशु के वस्त्र बदल देना चाहिये।

४-४५ बजे—संतरे का रस पिलावें।

सायं-काल ६ बजे—पुनः स्तन-पान करावें।

६-२० बजे—इस समय शिशु को सुला देना चाहिये। खिड़कियाँ
खुली रहें। दीपक बुझा दिया जाये।

रात्रि १० बजे—पुनः स्तन-पान कराके शिशु को सुला-दें।

स्मरण रहे, शिशु जन्म लेने के पश्चात् ही क्रिया शील हो जाता है। अतः बुद्धिमान माता-पिता—विशेष कर चतुर-गृहिणी का यह कर्तव्य है कि वह उसी समय से बालक में अच्छे संस्कारों का प्रभाव डालना आरम्भ कर दे। बच्चा शैशव-काल से ही अपने स्वभाव को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेता है। अतः माँ को चाहिये कि वह घड़ी देख कर ठीक समय पर उसे दूध पिलावे, नियत समय पर सुलावे, स्नान करावे, धूप दिखावे और टहलावे। अभिप्राय यह कि

शिशु-चर्या का एक-एक कार्य ठीक और नियमित रूप से होना चाहिये। बालक के रोने पर तुरन्त ही उसे गोद में उठा लेना अथवा स्तन-पान कराने लगना ठीक नहीं। क्योंकि बच्चे को थोड़ी देर रोना भी बहुत ज़रूरी है। पर, इस बात का ध्यान रक्खें कि बच्चे के रोने का कारण कोई रोग अथवा पीड़ा तो नहीं है। यदि कोई रोग हो, तो उसका तुरन्त उपचार करना ठीक है। बालक को सुलाने के लिये अफीम आदि नशीले द्रव्यों का सेवन कराना, मानों जीते जी उसे मृत्यु के मुखमें झोंकने के बराबर है। जागते समय माता-पिता को प्रतिदिन नियमित रूप से बच्चे के साथ खेलना चाहिये।

कुछ खास बातें

१—बालकों को डेढ़ वर्ष का हो जाने के बाद दूध न पिलाना चाहिये।

२—यदि इस बीच माता पुनः गर्भ-धारण करले, तो उसे अपने पहले बच्चे को स्तन-पान कराना तुरन्त बन्द कर देना चाहिये। अर्थात्, गर्भवती को अपने बालक को स्तन-पान कदापि न कराना चाहिये।

३—बालकों को गंदे स्थान—पेशाब या पाखाने में, अधिक देर नहीं पड़े रहने देना चाहिये। बहुत सी स्त्रियाँ ऐसी लापरवाह होती हैं कि बालक मल-मूत्र करके पड़ा रहता है और वे या तो अपने काममें उलझी रहती हैं, या अपनी किसी पड़ोसिन से गप्प हाँकने में तल्लीन रहती हैं। उधर बच्चा मल-मूत्र में सना हुआ चीत्कार मचाया करता है, मक्खियाँ उसके अङ्ग-प्रतिअङ्ग पर भिन-भिनाया करती हैं—पर उन्हें

उसकी ज़रा भी परवा नहीं रहती। बहुत देर हो जाने पर जब बच्चा रोते-रोते थक जाता है, तब वे आती हैं उसे उठाने और साफ करने। परन्तु ऐसा करने के पूर्व कुछ स्त्रियाँ तो बिगड़ कर उस निर्दोष बालक की पहले अच्छी तरह से मरम्मत कर लेती हैं, तब उसे धुलाती या स्नान कराती हैं। ऐसा कदापि नहीं होना चाहिये। बच्चे को हर समय साफ रक्खें।

४—शिशु को मूल्यवान आभूषण कदापि न पहनने दें। यह कभी-कभी बच्चे के प्राण तक ले लेता है।

५—बच्चों को हर समय गोद में चिपटा कर न रक्खा जाये। सिर्फ स्तन-पान कराने के समय ही गोद में लिया जाये।

बालकों के कानों तथा बालों में कम से कम चौथे दिन सरसों का तेल डालना उचित है। इससे मस्तक में तरावट आने के कारण आँख नहीं दुखती। धूल में खेलने के कारण बालकों के मस्तक में मैल बहुत जम जाता है, इसलिये उसे साफ करके बालों में तेल डालना चाहिये। बालकों की मनोवृत्ति समझने की चेष्टा करें—उनको कब क्या इच्छा है, इसे जानने का पूरा प्रयत्न करें। बच्चा केवल भूख लगने पर ही नहीं रोता। यह देखना चाहिये, कि उसे कोई कष्ट अथवा रोग तो नहीं है। बुद्धिमती मातायें बच्चे की चेष्टाओं से ही उसकी हार्दिक इच्छायें जान लेती हैं। जो माता अपने बच्चे की मूक-भाषा न समझ सके, वह वास्तव में उसकी माँ कहलाने की अधिकारिणी नहीं।

दाँत निकलते समय बच्चों को खाँसी, अपच, उल्टी तथा लाल आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में माताओं को चाहिये

कि वे कोई नशीली वस्तु खिलाकर बच्चों की खाँसी रोकने की चेष्टा न करें। क्योंकि इससे बड़ी हानि होती है। हाँ, यदि थोड़ी मात्रा में 'कास्टर आयल' (अरण्डी का तेल) पानी में मिलाकर पिला दिया जाये, तो उससे दस्त होने के कारण सब ठीक हो जायेगा। बालकों को चुप कराने के लिये 'हव्वा' अथवा 'भूत-प्रेत' का भय कदापि न दिखाना चाहिये, इससे बच्चे डरपोक हो जाते हैं तथा उसके स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसे बालक बड़े होने पर निर्बल और भीरु स्वभाव के बने रहते हैं।

यदि बच्चों को निम्नलिखित औषधियाँ खिलाई जायें तो बड़ा अच्छा हो। ये औषधियाँ सुश्रुत-संहिता में लिखी हैं। जब तक बालकों को दूध पीने की आदत रहे; तब तक उन्हें इस घी को चटाते रहना चाहिये—सफेद सरसों, बच, बुद्धी, चिरचिर्टा, शतावरी, सरिवन, ब्राह्मी, पीपल, हल्दी, कूट और सेंधा नमक को घी में पकाकर छान डाले और उसी घी को प्रतिदिन चटाया करें।

जब बालक अन्न खाने लगे और दूध छोड़ने का समय हो, तब मुलहटी, बच, पीपल, चीता, त्रिफला—इन सब को घी में पकाकर खिलावे। जब स्तन-पान करना छूट जाये; तब दशमूल, देवदारु, दूध, तगर, कालीमिर्च, शहद, वायबिडंग, मुनक्का, दोनों ब्राह्मी—इन सबको घी में पकाकर, वही घी बच्चे को चटावें। इससे बच्चे हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं।

दूध पीने वाले बच्चों को यदि कोई रोग हो जाये, तो बच्चे की चिकित्सा न करके, उसकी माता का इलाज करना चाहिये। ऐसा

करने से एक तो माता का दूध शुद्ध हो जाता है, दूसरे दूध पीने के कारण बालक पर भी उस औषध का प्रभाव होता है और इसीलिये वह रोग-मुक्त हो जाता है।

सन्तान-निग्रह (Birth Control)

दांपत्य-जीवन में एक समय ऐसा आता है, जबकि पति-पत्नी के लिये सन्तानोत्पत्ति एक भार बन कर उनके सुखमय-जीवन को विषाक्त बना डालता है; और उन्हें अधिक सन्तानोत्पत्ति की ओर से घृणा हो जाती है। ऐसा तभी होता है, जब कि या तो सन्तान अधिक बढ़ जाने के कारण उन्हें और की इच्छा न रह जाये, अथवा आर्थिक-समस्या उलझी होने के कारण गृहस्थ का भार असह्य हो उठा हो; पति-पत्नी में कोई रोग हो गया हो तथा ??, जाति या समाज की भलाई के लिये ऐसा करना ज़रूरी हो गया हो। अकारण ही सन्तान-निग्रह करना पाप है, किन्तु जब इसकी आवश्यकता हो, तब जरूर करना चाहिये।

गृहस्थ-जीवन में संभोग आवश्यक है। पति-पत्नी चाहें सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करें या न करें -संभोग तो उनके लिए एक शारीरिक आवश्यकता है। अधिक सन्तानोत्पन्न करना भी उचित नहीं। अब समस्या यह है कि ऐसा कौन-सा उपाय किया जाय, जिससे संभोग का आनन्द तो प्राप्त हो जाये, किन्तु सन्तानोत्पत्ति के भार से वे मुक्त ही रहें।

आजकल शिक्षित-समाज में सन्तान-निग्रह के लिये कृत्रिम साधनों का अधिक प्रचार है। समस्त कृत्रिम साधनों (Cotnraceptives) को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। जैसे—१—यांत्रिक साधन

(Mechanical appliances), २—रासायनिक उपाय Chemical) और, ३—शल्य-क्रिया (Surgical)।

१—यांत्रिक साधन—ये दो प्रकार के होते हैं। एक वह, जो पुरुषों द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं और जिन को अंग्रेजों में 'फ्रेंचलेदर' (French Leather) कहते हैं। यह रबर की एक थैली सी होती है, जो संभोग के समय पुरुष अपने शिश्न पर पहन लेता है। थैली का मुख दूसरी तरफ से बन्द होने के कारण, संभोग के समय जब वीर्य-पात होता है; तब शुक्रकीट गर्भाशय तक पहुँचने के बदले इसी थैली में भटक जाते हैं और इसी कारण गर्भाधान नहीं हो सकता। दूसरी 'पेसरी' स्त्रियों के लिये मिलते हैं। यह रबर की एक छोटी सी टोपी-सी होती है, जिसे संभोग के पूर्व स्त्रियाँ योनि के भीतर गर्भाशय के मुख पर पहन लेती हैं, इस दशा में पुरुष मैथुन के समय कुछ नहीं भरता। इससे भी वीर्य और शुक्रकीट योनि द्वारा गर्भाशय में प्रवेश नहीं कर पाते। इसी से गर्भाधान नहीं हो सकता।

२—रासायनिक उपाय—उपयुक्त यान्त्रिक-साधनों के अतिरिक्त, कई ऐसे रासायनिक पदार्थ भी मिलते हैं, जिनका प्रयोग सन्तान-निग्रह के लिये किया जाता है। कोकोबटर (Coco-butter) जिसमें कुनैन मिली रहती है, का प्रयोग भी किया जाता है। कुछ ऐसी टिकियाँ भी मिलती हैं जिन्हें संभोग के पूर्व योनि में रख लिया जाता है। इनके प्रभाव से शुक्रकीट मर जाते हैं। रुई को निम्नांकित द्रवों में डुबो कर गर्भाशय के द्वार पर रखने से भी गर्भाधान नहीं होता। १—साबुन का सोल्यूशन, २—एक प्रतिशत लेक्टिक एसिड सोल्यूशन,

३—तीन प्रतिशत ग्लीसरीन-एसिड सोल्यूशन, ४—नीम तेल, तथा, ५—जैतून का तेल।

२—शल्य-क्रिया—सन्तान-निग्रह के लिये शल्य-क्रिया का प्रयोग भी किया जाता है। पर ऐसा वही लोग करना पसन्द करते हैं, जिन्हें फिर आयु-पर्यन्त सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा नहीं रहती। यह तो सब जानते ही हैं कि शुक्राणु अंडों में तैयार होते हैं और वहाँ से वे वीर्य-वाहक नलिकाओं द्वारा शिश्न-मार्ग में जाते हैं। अतः आपरेशन द्वारा यह नलिका, जो शुक्राणुओं को अंडों से शिश्न-नलिका में लाती है, काट दी जाती है इसी प्रकार स्त्रियों की डिंब-प्रणाली (Fallopian tube) के एक अंश को शल्य-क्रिया द्वारा काट दिया जाता है, जिससे डिंब-ग्रंथि से डिंब डिंब-प्रणाली द्वारा गर्भाशय में प्रवेश नहीं करता। इसीसे गर्भ नहीं रहता।

सन्तान-निग्रह के ये सभी साधन पूर्णरूप से निर्दोष तथा स्वास्थ्यप्रद हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता पुरुष और स्त्री जिन यन्त्रों का प्रयोग करते हैं, वे बहुधा रबर के बने होते हैं। इसलिये उनके फट जाने का भय रहता है। यदि वे संभोग के समय फट जायें, तो निश्चय ही शुक्रकीटों का प्रवेश गर्भाशय में हो जायेगा। वैसी दशा में गर्भाधान होने में किंचित् भी संदेह नहीं। परन्तु सबसे हानिकर बात तो यह है कि इनका प्रयोग करते हुए स्त्री-पुरुष संभोग के स्वाभाविक सुख से वंचित रह जाते हैं। योनि और शिश्न का स्पर्श नहीं होता। कृत्रिम साधनों के प्रयोग से मैथुन का स्वास्थ्य पर वैसा ही घातक प्रभाव पड़ता है, जैसा कि अप्राकृतिक-मैथुन का। अतः ये यंत्र त्याज्य हैं।

रासायनिक उपाय तो यों भी स्पष्टतः स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। उनके प्रयोग से स्त्री पुरुष की जननेंद्रियों को बहुत हानि पहुंचती है। यदि प्रयोग करने के बाद वैज्ञानिक रीति से इन्द्रियों की शुद्धि न की गई, तो उन में विष फैल जाने का भी भय रहता है। अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से ये कृत्रिम उपाय अनुपयोगी हैं। नैतिक दृष्टि से भी यदि देखा जाये, तो कृत्रिम उपाय वांछनीय नहीं। इनके प्रयोग से व्यभिचार और दुराचारों की अधिक वृद्धि होती है। जब स्त्री-पुरुष को गर्भधारण का भय नहीं रहता तब वे बिना किसी प्रकार की समाज-मर्यादा का ध्यान रक्खे अनियमित यौन-सम्बन्ध (Illegal sex-relations स्थापित करने में स्वतन्त्र और एक हद तक स्वच्छन्द भी बन सकते हैं। भारत में, शिक्षित वर्ग में, स्कूलों और कॉलिजों में तथा विश्व-विद्यालय आदि महत्वपूर्ण स्थानों में,— जहाँ युवक और युवतियाँ स्वतन्त्रता-पूर्वक एक दूसरे से मिल-जुल सकते हैं, वे कृत्रिम साधनों के प्रयोग द्वारा गुप्त-रूपेण व्यभिचार में लीन रहते हैं। क्योंकि उन्हें गर्भधारण का तो भय रहता नहीं। आर्थिक दृष्टि से भी इन साधनों का प्रयोग करना कम से कम निर्धनों और देहातियों के सामर्थ्य की बात तो है नहीं—कारण, कि ये साधन इतने मूल्यवान और कीमती होते हैं, कि जिन्हें खरीदने के लिये साधारण आय वाले पुरुषों की अवस्था आज्ञा नहीं देती।

ऐसी स्थिति में, जब कि स्त्री-पुरुष ब्रह्मचारी नहीं रह सकते, और कृत्रिम-साधनों का प्रयोग स्वास्थ्य और समाज के लिये हानि-कारक है, तब सन्तान-निग्रह किस प्रकार किया जावे?

इसमें सन्देह नहीं कि संसार के वैज्ञानिकों और चिकित्सकों का एक बड़ा भाग इन कृत्रिम-साधनों की विफलता और हानियों का अनुभव कर चुका है। इसी लिये अब कुछ प्रसिद्ध डाक्टर ऐसे साधन के परीक्षण में लगे हुए हैं, जो प्राकृतिक हों आदर्श-सन्तान-निग्रह उसी को कहा जा सकता है, जो पति-पत्नी को मैथुन-प्रक्रिया में कोई कृत्रिमता उत्पन्न न करते हुए सफलता-पूर्वक गर्भ-निरोध कर सके। दूसरे शब्दों में, स्त्री-पुरुष को मैथुन के समय ऐसा अनुभव कदापि न हो कि उन्होंने किसी कृत्रिम-उपाय का प्रयोग किया है।

न्यूयार्क के एक प्रसिद्ध डाक्टर—मिस्टर आर० एस० डिकिंसन ने 'सेफ पीरियड' (Sefeperiod)—अर्थात्, ऐसा समय जब कि गर्भ धारण की कोई संभावना न हो—का विशेष अध्ययन किया है। डा० डिकिंशन का कथन है—"मास भर में ऐसा कोई समय नहीं, जब कुछेक स्त्रियों ने गर्भ-धारण न किया हो। रजोदर्शन से पूर्व का एक सप्ताह ऐसा समय है, जब कि गर्भ-धारण की सब से कम संभावना होती है। स्त्रियाँ रजोदर्शन के समय गर्भ-धारण के योग्य होती हैं, परन्तु रजोदर्शन के बाद आठ दस दिन तक ये गर्भ-धारण के लिये सब से अधिक योग्य होती हैं। अत जो स्त्री-पुरुष प्राकृतिक ढङ्ग से सन्तान-निग्रह की इच्छा करते हों, वे बड़ी आसानी से मासिक धर्म के पूर्व-सप्ताह में मैथुन कर सकते हैं। यह निसन्देह सत्य है कि ऐसा करते समय उनको अधिक उत्तेजना के समय आत्म-संयम का पालन करना होगा। मासिक-धर्म के बाद स्त्री जिस स्वाभाविक कामो-

तेजना का अनुभव करती है, उसका बड़ी दृढ़ता के साथ दमन करना पड़ेगा।"

सन्तान-निग्रह के प्राकृतिक उपाय

१—रजोदर्शन के प्रथम दिन से बीसवें दिन तक पति-पत्नी को सहवास न करना चाहिये।

२ संभोग रजोदर्शन से पूर्व-सप्ताह में किया जावे।

३—मैथुन के समय कुछ विशेष आसनों (Attitude) का प्रयोग किया जाये।

४—संभोग के पश्चात् तुरंत ही योनि को जल से धो देना चाहिये, जिससे वीर्य गर्भाशय में न जा सके।

सन्तान-निग्रह की इच्छा रखने वाले स्त्री-पुरुषों को जहाँ तक हो सके, कृत्रिम-उपायों का आश्रय न लेकर सदा प्राकृतिक साधनों का ही अधिकतर प्रयोग करना चाहिये। कृत्रिम-साधनों से हानि तो होती ही है, पर साथ में मानसिक और शारीरिक दुर्बलताएँ भी इनसे आ घेरती हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि जिस आनन्द प्राप्ति के लिये मैथुन किया जाता है, जब वह ही न मिले, तो बेकार क्यों अपने स्वास्थ्य को खुद ही मिट्टी में मिलाया जावे। प्राकृतिक साधन के प्रयोग से उद्देश्य-पूर्ति भी होती है और आनन्द भी मिलता है।

इसके अलावा, सन्तान-निग्रह के इच्छुक पति-पत्नी को निम्नलिखित आसनों का भी प्रयोग करना चाहिये। इन आसनों से हानि भी कुछ नहीं होती; और उद्देश्य-पूर्ति के साथ-साथ आनन्द भी वैसा ही मिलता है।

सन्तान निग्रह के आसन

१ पत्नी पीठ के बल चित पलंग पर लेट जाये। अपने घुटनों को ऊँचा उठा ले, और पैरों को नितंबों से मिलावे। जंघाओं को चौड़ी कर ले। अब पति जंघाओं के बीच में बैठ कर अपने शिश्न को योनि में प्रवेश करे और पत्नी के पेट पर लेट जाये। तब स्त्री दोनों पांव अपने सीधे फैलाले।

२—यदि उपरोक्त आसन करते समय पत्नी अपने नितंबों के नीचे मजबूत, कुछ मोटा और कड़ा तकिया लगा ले, तो और भी अच्छा हो। संभोग करते समय पत्नी की दोनों जंघायें परस्पर मिली होनी चाहिये।

३—पति को पहले पलंग या फर्श पर पालथी मार कर बैठ जाना चाहिये। फिर पत्नी उसकी ओर मुँह करके ऐसे बैठे कि, उसका सीधा पैर पति के बायें और बायाँ पैर पति के दायें में रहे। तब पति-पत्नी संभोग में रत होयँ, इस आसन की विशेषताएँ निम्न-लिखित हैं-

१ इस आसन में स्त्री को बहुत शीघ्र आनन्द प्राप्त होता है।

२—पुरुष की स्तंभन-शक्ति बढ़ जाती है और स्त्री उससे पहले स्खलित हो जाती है।

३—स्त्री स्वेच्छानुसार इस आसन में गति कर सकती है।

४—सारा वीर्य योनि से बाहर निकल जाता है। गर्भाशय के मुख पर वीर्यपात नहीं होता।

—वात्स्यायन के 'काम सूत्र' से

गर्भाधान का आसन

गर्भाधान के लिये श्रेष्ठ आसन निम्नलिखित हैं। जो स्त्रियाँ गर्भ-स्थिति की इच्छा रखती हों, उन्हें इसी का प्रयोग करना चाहिये। गर्भ धारण करने में यह आसन स्त्रियों की बड़ी सहायता करता है।

स्त्री पलंग पर अपने पांव सीधे करके चित लेट जाये, और घुटने समेट ले, जंघाओं को चौड़ा कर ले। परन्तु पैरों के तलवे पलंग के साथ चिपके रहने चाहिये। अब पुरुष स्त्री की जंघाओं के बीच में बैठ कर शिश्न प्रवेश करे। पुरुष के पैर और घुटने स्त्री के पैर और जांघ के बीच में रहें। पुरुष स्त्री के पेट पर अधर लेटा रहे।

कभी-कभी पति-पत्नी की गर्भाधान के लिये अति उत्कट अभिलाषा होती है, और वे शरीर से भी दोनों ही पूर्ण स्वस्थ होते हैं, उनमें न कोई जननेन्द्रिय सम्बन्धी दोष होता है; और न डिंब अथवा वीर्य सम्बन्धी ही दोष होता है किन्तु फिर भी गर्भाधान नहीं होता। इसका कारण यह है कि स्त्री की योनि से एक प्रकार का तरल-द्रव (Acid Secretion) प्रवाहित होता रहता है। इससे स्त्री को कोई हानि नहीं होती, और उसे इसका अनुभव भी नहीं होता। परन्तु इस तरल द्रव से शुक्र कीट निर्जीव और निष्क्रय बन जाते हैं। अतः गर्भ-धारण के लिये यह परम आवश्यक है कि मैथुन से पूर्व एक बार सोडियम बाइ-कारबोनेट को पानी में घोल कर उससे योनि में पिचकारी दे दे, जिससे योनि-मार्ग साफ हो जाये।

स्त्री की योनि के आन्तरिक द्वार [गर्भाशय की ग्रीवा] पर कभी कभी श्लैष्मा (Mucus) अधिक जम जाता है। इससे डिंब और

शुक्र-कीट के संयोग में बाधा पड़ जाती है। अतः वीर्यपात के साथ अथवा उसके बाद योनि में अति शक्तिप्रद गति होनी चाहिये। मैथुन भयभीत अथवा चिन्ता ग्रसित होकर नहीं, बल्कि चिंतामुक्त होकर करना चाहिये।

—वात्स्यायन के 'काम सूत्र' से

प्यारी बहनो! वर्तमान कट्टरपंथियों के विचारों तथा उल्लेखों ने भारतीय नारी-जीवन को दुःखमय और सङ्कीर्ण बना डाला है। देश की अधोगति में नारी-जाति का यह तिरस्कार ही मूल कारण है। हिन्दू-नारी का वास्तविक जीवन विवाह के समय से आरम्भ होता है। अतः हमने इस पुस्तक के प्रथम-खण्ड में 'विवाह क्या ?' शीर्षक प्रथम परिच्छेद से आरम्भ करके, जहां तक हो सका गृहस्थ-जीवन के हर पहलू पर दृष्टि डालते हुए, प्रायः हर तरह की जीवनोपयोगी बातों का इस पुस्तक में समावेश किया है। यदि बहनें इस "चतुर गृहणी" नामक पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर—इसमें लिखे हुए ढंग से काम करने की चेष्टा करेंगी, तो हमे पूर्ण विश्वास है कि अल्पकाल में ही सचमुच एक "चतुर गृहणी" बन कर गृहस्थ-जीवन को सुखी बना सकेंगी।